ओ३म्

अथ स्मार्त्तकर्मपद्धतिः॥

स्तिपुण्याहवाचन, मण्डिकावधान, आवसथ्याधान
[गृह्याग्नि के स्थापन का विधान]

पासनहोम [वा स्मार्त्त अग्निहोत्र] पक्षादिकर्म
[अर्थात्-स्मार्त्तदर्शपौर्णमासविधि] और
पञ्चमहायज्ञ नित्यकर्म ।

इन सब गृह्याग्नि सम्बन्धी कर्मों को विशेष कर पारस्करगृह्यसूत्रानुसार
पद्धति रूप में लोकोपकारार्थ

भीमसेन शर्मा ने संग्रह करके

और

सरस्वती यन्त्रालय--इटावा में

छपा कर प्रकाशित किया ॥

ता० ५ । ५ । १९००

प्रथम वार ५००] [मूल्य ।)

अथ प्रस्तावः ॥

इस पुस्तक के पाठक महाशयों को ज्ञात हो कि वेदोक्तधर्म [वैदिकग्रन्थों में लिखा वा कहा वेदानुकूल कर्त्तव्यकर्म] इस समय वहुत ही अधोगति में आगया है। अंग्रेजी फारसी आदि के अधिक प्रचार से ब्राह्मणादिद्विजों की भी श्रद्धा तथा विश्वास धर्म कर्म में प्रायः नहीं रहा इस का प्रधान कारण वाल्यावस्था से संस्कृत भाषा का तथा वैदिकधर्म कर्म प्रतिपादक वेद वेदाङ्ग ग्रन्थों का न पढ़ाया जाना है। तथापि जो कुछ ब्राह्मणादि लोग वैदिक सम्प्रदाय के श्रद्धालु शेष हैं उन को धर्म कर्म सुधारने का सुगम तथा सुलभमार्ग वताने वाले पुस्तक नहीं मिलते। इस विचार से मैंने कर्मकाण्ड के कई पुस्तक वना देने का संकल्प किया है। जिन में से एक यह स्मार्त्तकर्मपद्धति भी है। यद्यपि इस से पूर्व श्रौतकर्म के दो पुस्तक "दर्शपौर्णमासपद्धति तथा इष्टिसंग्रह,, वन छप चुके हैं। तथापि उन से पहिले इस पुस्तक की आवश्यकता इस लिये है कि श्रौताग्नियों से पहिले स्मार्त्ताग्नि का स्थापन करना शास्त्रानुसार द्विजों को उचित है। यद्यपि स्मार्त्त-गृह्याग्नि में होने वाले गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नय ये तीन संस्कार [तीन संस्कार स्त्री के होने से गृह्याग्नि में होते और जातकर्मादि संस्कार साक्षात् सन्तान के हैं इस कारण उन को लौकिकाग्नि में करने का विधान है] श्रवणाकर्म, उपाकर्म, उत्सर्ग, सीतायज्ञ इत्यादि भिन्न २ समयों में गृह्याग्नि में होने वाले अनेक कर्म हैं [जिन में से विशेष उपयोगी कई कर्मों को सम्भव हुआ तो बनाया छपाया भी जायगा] तथापि उन में से अत्यन्त उपयोगी वा प्रथम कर्त्तव्य नित्य सायंप्रातः काल का औपासनहोम, प्रत्येक प्र-

तिपदा को विहित पक्षादिकर्म तथा भोजन के समय नित्य करने योग्य पञ्चमहायज्ञ यहां प्रथम छपाये हैं। गृह्याग्नि को विधिपूर्वक स्थापन करने वाला इस पुस्तक में लिखे अनुसार अवश्य ही औपसनहोमादि नियम से करे। यदि कोई अनाहिताग्नि पुरुष भी नित्य २ लौकिकाग्नि को स्थापन करके सायंप्रातःकाल होम तथा पञ्चमहायज्ञ भी करे तो कोई दोष नहीं किन्तु न करने से करना अच्छा है। "अकरणान्मन्दकरणं श्रेयइति जनश्रुतेः" यद्यपि विधिहीन होम यज्ञादि तमोगुणी कहाते हैं तथापि उन का धर्मकोटि में होना खण्डित नहीं होता। विधि पूर्वक शास्त्रानुकूल धर्म की अपेक्षा विधि रहित धर्म निकृष्ट है पर है वह धर्म ही किन्तु अधर्म नहीं। जैसे धर्महीन अशिक्षित मूर्ख दरिद्र मनुष्य विद्वान् वा धनी की अपेक्षा निकृष्ट तो अवश्य है पर है वह मनुष्य ही किन्तु पशु वा पक्षी नहीं है। इसलिये द्विजों को उद्योग तो यही करना चाहिये कि हम श्रौत स्मार्त्त दोनों प्रकार के अग्नि को विधि पूर्वक स्थापन करके श्रौत स्मार्त्त सब कर्मों को यथार्थ करें। यदि किन्हीं को दोनों के कर सकने का सामर्थ्य न दीखे तो श्रौत की अपेक्षा सीधे सहज में होने वाले स्मार्त अग्नि को स्थापित करके उस में औपासन होमादि को अवश्य करें। पूर्व काल में अनाहिताग्नि गृहस्थ द्विज बीच की कक्षा में पतित माने जाते थे। इसीलिये मनु जी ने अनाहिताग्निता उपपातकों में गिनायी और उस का प्रायश्चित्त भी लिखा है। अब हम सभी ब्राह्मणादि अनाहिताग्नि प्रायश्चित्तार्ह अर्द्धपतित वा अनेक पूर्णपतित हो रहे हैं। जब तक कर्मों द्वारा हमारा अन्तःकरण शुद्ध न होगा कदापि हम लोग

ईश्वर के कृपा पात्र वा मोक्षाधिकारी नहीं हो सकते । इसलिये हम को अत्यावश्यक है कि एक गृह्याग्नि को ही स्थापित कर हम आहिताग्नि बनें और स्मार्त्त ही कर्म करें श्रौतस्मार्त्त में केवल यही बड़ा भेद है कि गृह्यसूत्रोक्त सब कर्म स्मार्त्त और श्रौतसूत्रोक्त सब कर्म श्रौत हैं । वेदानुकूल दोनों ही मानें जायंगे तथापि श्रौतकर्म की कक्षा उत्तम है । यदि किन्हीं लोगों को गृह्याग्नि का नित्य रखना भी दुस्तर ज्ञात हो तो लौकिकाग्नि में ही वे लोग विधि पूर्वक पञ्चमहायज्ञादि कर्मकरें तबभी तृतीय कक्षा में अच्छा है । यदि कोई इस विधि से भी न कर सकें वे जिस किसी प्रकार स्वाहान्त होम तथा देवयज्ञादि करें तब भी न होने से चतुर्थ कक्षा में अच्छा ही है । और स्वस्तिपुण्याहवाचनकोयो तो लौकिकाग्नि में होने वाले यज्ञोपवीत विवाहादि संस्कारों में भी करना चाहिये। स्वस्तिपुण्याहवाचन कर्म प्राचीन तो अवश्य है क्योंकि व्याकरण अष्टाध्यायी के (अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ।५।१।) सूत्र पर कहे वार्त्तिक में ये शब्द आते हैं वहां से स्वस्तिवाचन वा पुण्याहवाचन कर्म विशेष का नाम सिद्ध होता है तथापि किसी गृह्यसूत्र में इस का विधान हमें अभी नहीं मिला पर मिलना सम्भव है। इस से विघ्नशान्त्याद्यर्थ कर्त्तव्य यह भी अवश्य है । जो कोई ब्राह्मणादि श्रद्धापूर्वक श्रौत स्मार्त्त अग्नियों को विधि पूर्वक स्थापन करके यज्ञादि नित्यनैमित्तिक कर्मकाण्ड करना चाहें तो उन को सहायता की अपेक्षा अवश्य होगी और जो इस धर्म प्रचारार्थ मुझ से सहायता चाहेंगे उनको मैं यथाशक्ति यथासम्भव सहायता अवश्य दूंगा । इति ॥ हस्ताक्षराणि—भीमसेनशर्मणः ॥

अथ संक्षेपेण स्वस्तिपुण्याहवाचनम् ।

सर्वशुभकर्मस्वादौ विशेषेणावसथ्याधानारम्भे सोम-
यागादियज्ञारम्भे च स्वस्तिपुण्याहवाचनं कुर्यात् । तद्यथा—
कृतमङ्गलस्नानः स्वलङ्कृतः कृताचमनः प्राङ्मुखो यजमानो
वसनाच्छादितपीठउपविश्य पत्नीं च स्वदक्षिणतः प्राङ्मुखी-
मुपवेश्य—ब्राह्मणैः सह आनोभद्रा इत्यादिशान्तिपाठं जपेत् ।

अथ शान्तिपाठमन्त्राः ॥

ओं—आनोभद्राःक्रतवोयन्तुविश्वतो—ऽदब्धासोऽअपरीता-
सऽउद्भिदः । देवानोयथासदमिद्वृधे असन्नप्रायुवोरक्षितारो
दिवेदिवे ॥१॥ देवानाम्भद्रासुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳराति-
रभिनो निवर्त्तताम् । देवानाꣳसख्यमुपसेदिमावयं देवान-
ऽआयुः प्रतिरन्तुजीवसे ॥२॥ तान्पूर्वयानिविदाहूमहेवयं भग-
म्मित्रमदितिन्दक्षमस्रिधम् । अर्य्यमणंवरुणꣳसोममश्विना स
रस्वतीनःसुभगामयस्करत् ॥३॥ तन्नोवातोमयोभुवातुभेषजं त
न्मातापृथिवीतत्पिताद्यौः । तद्ग्रावाणःसोमसुतोमयोभुव-
स्तदश्विनाशृणुतन्धिष्ण्यायुवम् ॥४॥ तमीशानंजगतस्तस्थु-
षस्पतिं धियंजिन्वमवसेहूमहेवयम् । पूषानोयथावेदसामस-
द्वृधे रक्षितापायुरदब्धःस्वस्तये ॥५॥ स्वस्तिनइन्द्रोवृद्धश्रवाः
स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः

अब संक्षेप से स्वस्तिपुण्याहवाचन का प्रयोग लिखते हैं—सब शुभकर्मों के आदि में और विशेष कर आवसथ्याधान श्रौताधान और अग्निष्टोमादि सोम-यागों के आरम्भ में स्वस्तिपुण्याहवाचन करे । सुगन्धित जलसे स्नान करे अच्छे अलङ्कारों से युक्त यजमान आचमन किये पश्चात् वस्त्र से ढांपी चौकी पर पूर्वाभिमुख बैठ कर पत्नी को अपने से दहिनो ओर पूर्वाभिमुखी आसन पर बैठावे । चार ब्राह्मणों वेदपाठियों को उत्तराभिमुख बैठाके ऋत्विग्यजमान सब (आनोभद्रा०) आदि शान्तिसूक्तका जप करें । तब ईश्वर तथा परमर्षि आदि

स्वस्तिनोबृहस्पतिर्द्दधातु ॥६॥ पृषदश्वामरुतः पृश्निमातरः शुभंय्यावानोविदथेषुजग्मयः। अग्निजिह्वामनवः सूरचक्षसो-विश्वेनोदेवाऽअवसागमन्निह॥७॥ भद्रंकर्णेभिःशृणुयामदेवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳस-स्तनूभि-र्व्यशेमहिदेवहितंयदायुः॥८॥ शतमिन्नुशरदोअन्तिदेवा यत्रा नश्चक्राजरसन्तनूनाम्। पुत्रासोयत्रपितरोभवन्ति मानोम ध्यारीरिषतायुर्गन्तोः॥९॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष-मदि-तिर्मातासपितासपुत्रः।विश्वेदेवाऽअदितिः पञ्चजना-ऽअदि-तिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम्॥१०॥ तम्पत्नीभिरनुगच्छेमदेवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुतवाहिरण्यैः। नाकंगृभ्णानाः सुकृतस्यलोके तृ-तीयेपृष्ठेऽअधिरोचनेदिवः॥११॥ आयुष्यंवर्च्चस्यं रायस्पोष-मौद्भिदम्। इदꣳहिरण्यंवर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम्॥१२॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरो-षधयःशान्तिः। वनस्पतयःशान्तिर्विश्वेदेवाःशान्तिर्ब्रह्मशा-न्तिःसर्वꣳशान्तिःशान्तिरेवशान्तिःसामाशान्तिरेधि॥१३॥ यतोयतःसमीहसे ततोनोऽअभयंकुरु। शन्नः कुरुप्रजाभ्योऽअ-भयन्नः पशुभ्यः॥१४॥ सुशान्तिर्भवतु॥

ओंसच्चिदानन्दाय ब्रह्मणे नमः। परमर्षिभ्यो नमः। देवेभ्यो नमः। पितृभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। इति सर्वान् प्रणम्य-आचमनप्राणायामौ कृत्वा देशकालौ संकीर्त्यामुकफलप्राप्तये श्वोऽद्यवाऽमुककर्माहं क-रिष्ये। तदङ्गतयादौ स्वस्तिपुण्याहवाचनं करिष्ये इति संकल्पयेत्। ततः कर्त्ता स्वपुरतो महीद्यौरिति भूमिं स्पृशेत्-

को प्रणाम कर आचमन प्राणायाम करके तथा देश काल का कीर्त्तन करके अ-मुक फल सिद्धि के लिये आज वा कल अमुक काम मैं करूंगा। और उस का अङ्ग स्वस्तिपुण्याहवाचन करूंगा। ऐसा संकल्प करे। तदनन्तर यजमान आ-पने आगे (महीद्यौ०) मन्त्र से भूमि का स्पर्श कर (ओषधयःसं०) मन्त्र

ओम्—मही द्यौः पृथिवी च न—इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥१ य० ८।३२॥

ओषधयः समिति तण्डुलपुञ्जं कुर्यात्—

ओमोषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि॥ २ य० १२। ९६॥

तत आजिघ्रकलशमिति पुञ्जोपरि सलक्षणं धातुमयं मृन्मयं वा कलशं निदध्यात्।

ओमाजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः॥ ३ य० ८। ४२।

इमं मे वरुणेति पवित्रजलेन कलशं पूरयेत्—

ओमिमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके॥४॥ य० २१। १॥

गन्धद्वारामिति कलशे गन्धं क्षिपेत्—

ओम्—गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥५॥

पढ़ के चावलों की एक ढेरी करे। तदनन्तर (आजिघ्रकलशं०) मन्त्र से चावलों की ढेरी पर रोली आदि जिस में लगाये हों ऐसे सोने चांदी पीतलादि के वा मट्टी के कलश को रख के उस में (इमंमेवरुण०) मन्त्र से पवित्र जल डाले। (गन्धद्वारां०) से उस कलश में सुगन्धित खस आदि वस्तु डाल कर

चन्दनादिना तमनुलिप्य या ओषधीरिति सर्वौषधीः क्षिपेत् ॥

ओं—या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ६ ॥ य० १२ । ७५ ।

ओषधयः समिति पूर्वोक्तमन्त्रेण यवान् क्षिप्त्वा काण्डात्काण्डादिति दूर्वाः क्षिपेत्—

ओं काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ ७ ॥ य० १३ । २० ॥

अश्वत्थेवइति पञ्चपल्लवान्—

ओमश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाजइत्किलासथ यत्सनवथपूरुषम् ॥ ८ ॥ य० १२ । ७९ ॥

स्योनापृथिवीति सिकताशर्करादिमृदः क्षिपेत्—

ओं—स्योना पृथिवि नोभवा—नृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥९॥ य० ३५ । २१ ।

याः फलिनीरिति—फलानि—

ओं—याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूता—स्ता नो मुञ्च-

---

कलश पर चन्दनादि का लेपन करके (या ओषधीः०) मन्त्र से सर्वौषधि कलश में डाले । फिर (ओषधयःसं०) से उस में जौ डाल कर (काण्डात्काण्डात्०) से कलश में दूब गिरावे (अश्वत्थेव०) से आम के पांच पत्ते कलश में धरके (स्योनापृथिवि०) से बालू कंकड़ आदि कई शुद्ध जल शोधक जङ्गल की मट्टियों को कलश में डाले (याःफलिनी०) से कई शुद्ध फल उस में डाल

न्त्वर्थंहसः ॥९॥ य० १२ । ८९ ॥

परिव्राजप० इति पञ्चरत्नानि क्षिपेत्–

ओम्–परिव्राजपति कवि–रग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥

हिरण्यगर्भइति हिरण्यं क्षिपेत्–

ओंहिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे भूतस्यंजातःपतिरेक आसीत् । सदाधारपृथिवींद्यामुतेमां कस्मै देवायहविषाविधेम ॥ ११ ॥ य०२५।१०।

युवासुवासाइति वस्त्रेण रक्तसूत्रेण च वेष्टयेत् ।

ओम्–युवासुवासाः परिवीतआगात्सउ श्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवयउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

ततो वरुणं प्रार्थयेत्–

ओम्–तत्त्वायामि ब्रह्मणावन्दमान–स्तदाशास्तेयजमानोहविर्भिः । अहेडमानोवरुणेहबो–ध्युरुशंसमानआयुःप्रमोषीः ॥१८।४९॥

ततः प्रार्थनामाह–एताः सत्या आशिषः सन्तु । पुण्यं

कर तदनन्तर (परिव्राजपति०) मन्त्र से पांचरत्नों को कलश में गिरावे । (हिरण्यगर्भः०) मन्त्र से कलश में सुवर्ण डाले । यदि सुवर्ण का घड़ा हो तो सुवर्ण न डाले । (युवासुवासा०) पढ़ के धोये हुए नये वस्त्रको तथा केशरमें रंगे सूत को कलश में लपेटे । तव वरुण देवता की प्रार्थना (तत्त्वायामि०) मन्त्र से करे कि मुझे मृत्यु से बचाइये [स्मरण रहे कि यह सब कृत्य कलश के जल को अच्छा शुद्ध पवित्र करने के लिये है इस शुद्ध जल के अभिषेक से यजमान पवित्र होगा] तदनन्तर यजमान प्रार्थनाओं का आरम्भ करे–ये आगे कही मेरी इच्छा सत्य हों । पुण्य बढ़े पुण्य का दिन हो आयु बढ़े । ब्राह्मण

पुण्याहं दीर्घायुरस्तु—इति यजमानः। अस्तु पुण्यं पुण्याहं दीर्घायुरिति ब्राह्मणाः। यजमानः—शिवा आपः सन्तु। ब्राह्मणाः कुम्भस्थजलात्किंचिद्धस्ते गृहीत्वा—

ओम्—शन्नआपोधन्वन्याः३ शन्तेसन्त्वनूप्याः। शन्तेखनित्रिमाआपः शंयाःकुम्भेभिराभृताः ॥ अथर्व० १९। २। २॥

इति मन्त्रेण यजमानपत्न्योरुपरि सिञ्चेयुः। यज०—सौमनस्यमस्तु। ब्रा०—अस्तु सौमनस्यम्। यज०—अक्षतं चास्तुमेपुण्यं दीर्घमायुर्यशोवलम्। यद्यच्छ्रेयस्करंलोके तत्तदस्तु सदामम॥ अक्षतं चारिष्टं चास्तु। ब्रा०—अस्त्वक्षतमरिष्टं च। यज०—गन्धाः पान्तु सुमङ्गल्यं चास्तु। ब्रा०—

त्र्यम्बकंयजामहेसुगन्धिंपुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥

य० ३। ६०॥

ओ३म्—पान्तु गन्धा अस्तु सुमङ्गल्यं च। यज०—अक्षताः पान्तु—आयुष्यमस्तु। ब्रा०—पान्त्वक्षता अस्तु—आयुष्यम्। यज०—पुष्पाणिपान्तु सौश्रियमस्तु। ब्रा०—पान्तु

कहें—पुण्य, पुण्यदिन और दीर्घायु हो। यजमान—जल कल्याणकारी हों। तब ब्राह्मणलोग कलशसे जल लेकर (शन्नआपः०) मन्त्रसे यजमान और पत्नी के ऊपर सेचन करें। यज०—मन प्रसन्न हो। ब्रा०—अस्तु० यज०—मेरा पुण्य अक्षय हो आयु यश और बल बढ़े। लोक में जो २ कल्याण कारी कर्म हैं वह २ मेरे घर सदा होता रहे। अक्षय पुण्य हो हानि न हो। ब्रा० ऐसा ही हो। यज०—सुगन्ध मेरी रक्षा करें मृत्यु से बचावें। अच्छा मङ्गल हो। ब्राह्म०—(त्र्यम्बकं०) मन्त्रसे आशीर्वाद देके कहें सुगन्ध तुम्हारी रक्षा करें अच्छा मङ्गल हो। यज०—अक्षत साङ्गोपाङ्ग विद्यमान जिन में कुछ त्रुटि न हो ऐसे प्राणी वा अप्राणी रक्षा करें आयु बढ़ा हो। ब्रा०—यह सत्य ही हो। यज०— पुष्प रक्षा करें

पुष्पाणि–अस्तु सौश्रियम्। यज०–ताम्बूलानि पान्तु–ऐश्वर्यमस्तु। ब्रा०–पान्तु ताम्बूलानि–अस्त्वैश्वर्यम्। यज०–दक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्तु। ब्रा०–पान्तु दक्षिणा अस्तु बहुदेयम्। यज०–शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं चायुष्यं चास्तु। ब्रा०-अस्तु शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं चायुष्यं चेति वदन्तो यजमानं शिरस्यभिषिञ्चेयुः। यज०–यत्कृत्वा सर्ववेदयज्ञक्रियाकरणकर्म्मारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्त्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुःसामाशीर्वचनं बहूऋषिसम्मतं संविज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये। वाच्यतामिति विप्रा वदेयुः। ततो यजमानो ब्राह्मणानां हस्तेऽक्षतान्–दद्यात्–ते च–भद्रमित्यादिमन्त्रैराशिषो वदेयुः॥

भद्रंकर्णेभिःशृणुयामदेवा भद्रंपश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितंयदायुः॥ य० २५।२१॥

ओम्–द्रविणोदाद्रविणसस्तुरस्य द्रविणो-

अच्छी शोभा हो। ब्रा० ऐसा ही हो। यज०–पान रक्षा करें ऐश्वर्य हो। ब्रा० ऐसा ही हो। यज०–दक्षिणा रक्षा करें दान देने के लिये बहुत धनादि हों। ब्रा०–ऐसा ही हो। यज०–शान्ति पुष्टि संतोष शोभा कीर्त्ति यश विद्या नम्रता भोग बहुत पुत्र और बहुत आयु हो। ब्रा०–यह सब सत्य हो ऐसा कहते हुए यजमान के शिर पर थोड़ा अभिषेक करें। यज०–जिस को लेकर सब वेद सब यज्ञ और सब कर्मों के आरम्भ अच्छे शुभ निर्विघ्न होते हैं मैं उस ओंकार को आदि मान कर ऋग् यजुः तथा सामवेद सम्बन्धी बहुत ऋषियों के सम्मत प्रसिद्ध पुण्याह को आप लोगों की आज्ञा से कहलाऊंगा। ब्रा० कहलाइये। तब यजमान ब्राह्मणों के हाथ में धान वा न कुटे जौ देवे और ब्राह्मण लोग (भद्रं०)

द्वाःसनरस्यपर्यसत् । द्रविणोदावीरवतीमिषंनो द्रविणोदारासतेदीर्घमायुः ॥ ऋ० १।९६।८

ओम्–सवितापश्चातात्सवितापुरस्ता–त्सवितोत्तरात्तात्सविताऽधरात्तात् । सवितानःसुवतुसर्वताति सवितानोरासतांदीर्घमायुः ॥ ऋ० १० । ३६ । १४ ॥ नवोनवोभवतिजायमानो ऽन्हांकेतुरुषसामेत्यग्रम् । भागंदेवेभ्योविदधात्यायन् प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुः

ऋ० १० । ८५ । १९ ॥

ओम्–उच्चादिविदक्षिणावन्तोअस्थु–र्येअश्वदाःसहतेसूर्येण। हिरण्यदाअमृतत्वंभजन्तेवासोदाःसोमप्रतिरन्तआयुः ऋ० १०।१०७।२॥ आपउदन्तुजीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चसे । यस्त्वाहृदाकीरिणामन्यमानो मर्त्यमर्त्योजोहवीमि ॥ जातवेदोयशोऽअस्मासुधेहि प्रजाभिरग्नेअमृतत्वमश्याः । यस्मैत्वंसुकृते जातवेद उलोकमग्नेकृणवःस्योनम् ॥ अश्विनंसपुत्रिणंवीरवन्तंगोमन्तंरयिन्नशतेस्वस्ति ॥

ततो यजमानः–व्रतनियमजपतपःस्वाध्यायक्रतुशमदमदयादानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम् ।

इत्यादि मन्त्रों से आशीर्वाद कहें । यज०–व्रत, नियम, जप तप यज्ञ, शान्ति इन्द्रियनिग्रह दया दान करने वाले वेदाध्यायी ब्राह्मणों का मन एकाग्र हो ।

विप्राः—समाहितमनसः स्मः । यजमानः—प्रसीदन्तु भवन्तः । विप्राः—प्रसन्नाःस्मः । यजमानः—शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु तुष्टिरस्तु वृद्धिरस्तु—अविघ्नमस्तु । आयुष्यमस्तु । आरोग्यमस्तु । शिवं कर्मास्तु । कर्मसमृद्धिरस्तु । वेदसमृद्धिरस्तु । शास्त्रसमृद्धिरस्तु । पुत्रसमृद्धिरस्तु । धनधान्यसमृद्धिरस्तु । इष्टसम्पदस्तु । अरिष्टनिरसनमस्तु । यत्पापं तत्प्रतिहतमस्तु । यच्छ्रेयस्तदस्तु । उत्तरे कर्मण्यविघ्नमस्तु । उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु । उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सम्पद्यन्ताम् । हताश्च ब्रह्मविद्विषो हताश्च परिपन्थिनो हताश्चास्य कर्मणो विघ्नकर्त्तारः शत्रवः पराभवं यान्तु । शाम्यन्तु घोराणि । शाम्यन्तु पापानि । शाम्यन्त्वीतयः शुभानि वर्द्धन्ताम् । शिवा आपः सन्तु । शिवा ऋतवः सन्तु । शिवा—अग्नयः सन्तु । शिवा आहुतयः सन्तु । शिवा ओषधयः सन्तु । शिवा वनस्पतयः सन्तु । शिवा अतिथयः सन्तु । अहोरात्रे शिवे स्याताम् । निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् । प्रतिवाक्यं

ब्रा०—हमारा मन सावधान है । यज०—आप लोग मुझ पर प्रसन्न हों । ब्रा०—प्रसन्न हैं । यज०—शान्ति हो पुष्टि हो सन्तोष हो वृद्धि हो विघ्न न हों दीर्घायु हो नीरोगता हो कर्म कल्याणकारी हो । कर्म वेद शास्त्र पुत्र और धन धान्य की समृद्धि हो । इष्ट सम्पत्ति हो अनिष्ट की निवृत्ति हो पाप नष्टहो श्रेयप्राप्त हो भावी कर्म में विघ्न न हों । आगे २ दिन २ बढ़ती हो । आगे की क्रिया अच्छी शुभ हों । ब्रह्मद्वेषियों का नाश हो । लुटेरे डाकू नष्ट हों । कर्म में विघ्न करने वाले शत्रुओं की हार हो । घोर भयङ्कर कृत्य शान्त हों पाप शान्त हों विक्षेप शान्त हों शुभ काम बढ़ें जल और ऋतु कल्याण सुखकारी हों । गार्हपत्यादि तीनों अग्नि सुखकारी हों आहुतियां सुख हेतु हों ओषधियां सुखकारी हों वनस्पति—उदुम्बरादि सुख हेतु हों । अतिथि कल्याणकारी हों दिन रात्रि सुखकारी हों । सब ग्राम २ नगर २ में जल बर्षे ओषधियां फलवती हों अप्राप्त व-

ब्राह्मणाः प्रत्युत्तरं वदेयुः—यजमानः—पुण्याहकालान् वाच-
यिष्ये—ब्राह्मणाः—वाच्यताम् ॥

ओम्—उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र
इव सवनेषु शंससि । वृषेव वाजी शिशुमतीरपी-
त्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद विश्वतो नः
शकुने पुण्यमावद ॥ ऋ० ३ । ४३ । २ ।

अनया पुण्याहएव कुरुते । यज०—ब्राह्मणाः ! मम गृहे
अस्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु । इति स्वयं मन्दस्व-
रेणोक्त्वा—ब्राह्मणैः—पुण्याहमित्युक्ते पुनस्तदेव मध्यमस्व-
रेणोक्त्वा तैस्तथैवोक्ते पुनरुच्चस्वरेणोक्ते तथैव तैरुक्ते—
यजमानः—ब्राह्मं पुण्यमहर्यच्च सृष्ट्युत्पादनकारकम् ।
वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याहं ब्रुवन्तु नः ॥

ओम्—पुनन्तु मा देवजनाः—पुनन्तु मनसा
धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः ! पुनी-
हि मा ॥ य० १९ । ३९ ॥

स्तुओं की प्राप्ति हो प्राप्त की रक्षा हो । यहां प्रत्येक वाक्य में ब्राह्मण लोग प्रत्युत्तररूप आशीर्वाद देते जावें । यज०—पुण्याह के समयों को कहलाऊंगा । ब्रा०—कहलाइये ऐसा कह कर (उद्गातेव०) मन्त्र पढ़ें और इस ऋचा से पुण्याह ही होता है । यज०—हे ब्राह्मण लोगो ! मेरे घर में इस कर्म का शुभ समय आप कहें ऐसा मन्दस्वर से कहे । ब्रा०—इस कर्म का शुभ समय हो । फिर द्वितीय वार इसी वाक्य को यजमान तथा ब्राह्मण दोनों मध्यमस्वर से कहें । और तृतीयवार उच्चस्वर से कहें । यज०—ब्राह्म कल्परूप जो सृष्टि उत्पन्न कराने वाला पुण्यदिन है जो वेदरूप वृक्ष से प्रकट होता तथा नित्य है उस दिन को हमारे लिये पुण्य होना कहिये । तब (पुनन्तुमा०) मन्त्र पढ़ कर कहें कि पृथिवी का उद्धार करने में

पृथिव्यामुद्धृतायान्तु यत्कल्याणंपुराकृतम् । ऋषिभिः सिद्धसंघैश्च तत्कल्याणंब्रुवन्तुनः ॥ भोब्राह्मणाः ! मम स-कुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे अमुककर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः–कल्याणम् ३ ॥

ओम्–यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि ज-नेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳬशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षि-णायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्य-तामुपमादो नमतु ॥ य०–२६ । २ ॥

भोब्राह्मणाः ! सकुटुम्बस्य मम–ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा०–ऋध्यताम्३ ।

ओं सत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्मज्योतिरमृताअ-भूम । दिवंपृथिव्याअध्यारुहामाविदामदे-वान्स्वर्ज्योतिः ॥ य० ८ । ५२ ॥

यज०–भो ब्राह्मणाः ! मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा०–आयुष्मते स्वस्तिः ३ त्रिः ।

ओंस्वस्तिनइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा-

ऋषियों और सिद्ध लोगों ने जो कल्याण किया वह कल्याण हम लोगोंके लिये कहिये । हे ब्राह्मणो ! कुटुम्ब परिवार सहित मेरे घर में अमुक कर्म कल्याण-कारी हो ऐसा कहिये । ब्रा०–कल्याण हो कल्याण हो कल्याण हो तीनवार कहके (यथेमां०) मन्त्र पढ़ें । यज०–हे ब्राह्मणो ! कुटुम्ब सहित मेरी ऋद्धि आप कहें । ब्रा०–ऋद्धि हो ऐसा तीन वार कह कर (सत्रस्य०) मन्त्र पढ़के आशीर्वाद देवें । यज०–हे ब्राह्मणो ! कुटुम्ब परिवार सहित मेरी स्वस्ति आप कहें । ब्रा०–आयुष्मते स्वस्तिः–ऐसा तीन बार कह कर (स्वस्तिन०) इत्यादि

विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्ताक्ष्यो॑ऽअरि॑ष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु ॥ य०२५ । १९ ।

यज०–भोब्राह्मणा मम सकुटुम्बस्य श्रियं भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा०–अस्तुश्रीः ३ त्रिः ।

ओंश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रेपार्श्वेनक्षत्राणिरूपमश्विनौव्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मइषाणसर्वलोकंमइषाण ॥य० ३१।२२॥ ओंशतमिन्नुशरदोऽअन्तिदेवा यत्रानश्चक्राजरसंतनूनाम् । पुत्रासोयत्रपितरोभवन्ति मानोमध्यारीरिषतायुर्गन्तोः ॥ य० २५ । २२ ॥ अस्तुश्रीः३त्रिः । मनसः काममाकूतिंवाचः सत्यमशीय । पशूनाथंरूपमन्नस्य रसोयशः श्रीः श्रयतांमयि ॥ य० ३९ । ४ ॥

प्रजापतिर्लोकपालो धाताब्रह्माचदेवराट् ।
भगवान्शाश्वतोनित्यः सनोरक्षतुसर्वतः ॥
भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम्

ओंप्रजापतेनत्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणि

स्वस्तिवाचन के मन्त्रों से आशीर्वाद देवें । यज०–हे ब्राह्मणो ! कुटुम्ब सहित मेरी श्री को आप कहें । ब्रा०–अस्तु श्रीः, ऐसा तीन वार कह (ओंश्च०) दो मन्त्रों से आशीर्वाद कह कर फिर अस्तु श्रीः, वाक्य को तीन वार कहें । तब (मनसः०) मन्त्र से आशीर्वाद देकें कहें कि लोकों का रक्षक प्रजापति सूर्य और देवों का राजा धारण करने वाला ब्रह्मा तथा नित्य सनातन भगवान् परमात्मा हम सब की सब ओर से रक्षा करे । भगवान् प्रजा रक्षक प्रसन्न हो ऐसा कह (प्रजापते०) मन्त्र से प्रार्थना करके दीर्घायु यजमान के लिये स्वस्ति

परि॑ता ब॑भूव । यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु
व॒यꣳस्या॑म॒ पत॑यो र॒यीणाम् ॥ य० १० । २० ।

आयुष्मते स्वस्तिः ३ त्रिः ॥

ओं प्रति॒ पन्था॑मपद्महि स्वस्ति॒गाम॑ने॒हस॑म् ।
येन॒ विश्वाः परि॒ द्विषो॑ वृ॒णक्ति॑ वि॒न्दते॒ वसु॑ य० ४। २९।

अनेन पुण्याहवाचनेन प्रजापतिः प्रीयताम् ॥ ततो-ऽभिषेकस्तत्र पत्नीं वामत उपवेशयेत् । कलशोदकं गृहीत्वा-ऽविधुराश्चत्वारो ब्राह्मणा दूर्वाम्रपल्लवैः सपत्नीकं यजमा-नमभिषिञ्चेयुः । तत्र मन्त्राः—

ओं पयः॑ पृथि॒व्यां पय॒ ओष॑धीषु॒ पयो॑ दि॒-व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑ धाः । पय॑स्वतीः प्र॒दिशः॑ सन्तु॒ मह्य॑म् ॥ य० १८ । ३६ ॥ ओं पञ्च॑ न॒द्यः॑ सर॑स्वती-मपि॑ यन्ति॒ सस्रो॑तसः । सर॑स्वती तु॒ पञ्च॒धा सो दे॒शेऽभ॑वत्स॒रित् ॥ य० ३४ । ११ ॥ ओं पु॒-नन्तु॑ मा देवज॒नाः पु॒नन्तु॒ मन॑सा धियः॑ । पु॒-नन्तु॒ विश्वा॑ भू॒तानि॒ जात॑वेदः पुनी॒हि मा॑ ॥ य० १९ । ३९ ॥ ओम्—दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः

हो ऐसा तीन वार कहें (प्रतिपन्था०) मन्त्र से प्रार्थना करके कहें कि इस पुण्याहवाचन से प्रजापालक परमात्मा प्रसन्न हो । तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मण लोग पत्नी यजमान का अभिषेक कलश के जल से करें । इस समय यजमान पत्नी को अपने वामभाग में बैठावे । सावधान हुए ईश्वर भक्ति में तत्पर ब्राह्मण लोग दूर्वा और आम के पत्तों [जो प्रथम कलश में डाले थे] को भिगो २ कर

प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रियै दधामिबृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ य० ९।३०।

ओम्—देवस्यत्वा०सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ देवस्यत्वा० । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चाम्य ॥

ओंविश्वानिदेवसवित—र्दुरितानिपरासुव । यद्भद्रंतन्नआसुव ॥ ३० । ३ ॥ ओंधामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मादेवोबृहस्पतिः । सचेतसोविश्वे देवा यज्ञंप्रावन्तुनः शुभे ॥ य० १८।७६ ओंत्वंयविष्ठदाशुषो नॄंःपाहिशृणुधीगिरः । रक्षातोकमुतत्मना ॥ ११ ॥ य० १३ । १५ ॥ ओमन्नपतेऽन्नस्यनोदेह्यनमीवस्यशुष्मिणः । प्रप्रदातारं तारिषऊर्जं नोधेहिद्विपदेचतुष्पदे ॥ य०११।८३॥ ओंद्यौःशान्तिरन्तरिक्षथंशान्तिःपृथिवीशान्ति-

---

सपत्नीक यजमान का आगे लिखे प्रत्येक मन्त्र से अभिषेक करें । (अभिषिञ्चाम्यसौ) यहां—अभिषिञ्चामि से आगे पांचो मन्त्रों में असौ पद को निकाल कर यजमान का श ·न्त्यादि नाम लेवें जैसे—विश्वामित्रपोधन शर्मन् । युधिष्ठिर वर्मन् । लक्ष्मी चन्द्रगुप्त । पीछे (अमृताभिषेकोऽस्तु) वाक्य कहें । शान्तिः पद को तीन बार

रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ य० ३६। १७॥
ओं यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्यो-ऽभयं नः पशुभ्यः ॥ य० ३६। २२॥

अमृताभिषेकोऽस्तु। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः। सुशान्तिर्भवतु। ततः पुत्रवतीभिर्वृद्धसुवासिनीभिर्नीराजनं कार्यम्।

ओम्—अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्यऽआयुर्मे दाः। पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः। सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः। आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्यऽओजो मे दाः। विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि य० ३७। १२

इति ॥

कह के तथा (सुशान्तिर्भवतु) कह कर अभिषेक समाप्त करें [जिस कर्म के लिये स्वस्तिपुण्याहवाचन किया हो उस की समाप्ति में भी इसी कलश के जल से इसी प्रकार सपत्नीक यजमान का अभिषेक करके कलश का विसर्जन करावें] तदनन्तर जीवित पति पुत्रों वाली वृद्धस्त्रियां यजमान पत्नी को (अनाधृष्टा०) इत्यादि मन्त्र पढ़ के उठा ले जावें ॥

इति संक्षेपतः स्वस्तिपुण्याहवाचनं समाप्तम् ॥

अथ मणिकावधानम् ॥

गृह्याग्नेरीशानप्रदेशे यूपवदवटं खनेत् ।

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसि ॥

यजुषि० ५ । २२ । इतिमन्त्रेणाभ्रिमादाय ।

इदमहꣳरक्षसांग्रीवाअपिकृन्तामि ।

इतिमन्त्रेणभाण्डपरिमितमवटं परिलिखेत् । उदकस्पर्शः । गर्त्तं खात्वा प्राचः पांसूद्धास्य कुशानास्तीर्य-अक्षतानरिष्टकानृद्धिवृद्धिहरिद्रादूर्वासितसर्षपादि मङ्गलद्रव्यं खाते निःक्षिप्य तदुपरि-

ओं समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूः ।

इतिमन्त्रेण मणिकं खाते निधाय ततआपइत्यादिचतुर्भिर्मन्त्रैर्मणिकेऽप आसिंचेत्-

आपोरेवतीःक्षयथाहिवस्वः क्रतुंचभद्रंविभृथामृतंच । रायश्चस्थस्वपत्यस्यपत्नीः सरस्वतीतद्गृणतेवयोधात् ॥१॥ आपोहिष्ठामयोभुव-स्तानऊर्जेदधातन । महेरणायचक्षसे ॥२॥ योवः-शिवतमोरस-स्तस्यभाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः ॥३॥ तस्माअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥४॥ एवंमणिकमवधायैकंब्राह्मणंभोजयेत् । इति मणिकावधानम् ॥

भापार्थः—पारस्करगृह्यसूत्रकाण्ड ३ कण्डिका ५ में शालाकर्म के पश्चात्मणिकावधान कर्म लिखा है इस से प्रतीत होता है कि विधिवत् शालाकर्म समाप्त किये पश्चात् मणिकावधान कर्म करना चाहिये । पर गौणपक्ष में स्मार्त्ताधान के अनन्तर भी करना अच्छा ही है । गृह्याग्नि से ईशान कोण में यूप के तुल्य गढ़ा खोदे । (देवस्यत्वा०) मन्त्र से अभ्रि को हाथ में लेकर (इदमह०) मन्त्र से भाण्डपरिमितगर्त्त को चारों ओर से लिख कर जलस्पर्श करे । तत्पश्चात् गर्त्त खोद के पूर्व दिशा में धूलि निकाल २ डाल कर उस गर्त्त में कुश बिछा के कुशों पर खड़े जौ रीठे ऋद्धि वृद्धि ओषधियां हल्दी दूब और सफेद सरसों फैलाकर उस गर्त्त में (समुद्रो०) मन्त्र से घट को स्थापन करे । तब (आपोरेवती०) इत्यादि चार मन्त्रों से उस में जल भरे । इस प्रकार मणिकघट का स्थापन कर एक ब्राह्मण को भोजन करावे । इति मणिकावधानम् ॥

अथावसथ्याधानम् ॥

आ-समन्ताद्वसन्त्यस्मिन्निति-आवसथो गृहं तदुपयोगिकर्म्मनिष्पादनाय योऽग्निः स आवसथ्यस्तस्याधानं स्थापनमावसथ्याधानम् । गृह्यः स्मार्त्त-औपवसथ्यऔपासन-इत्यादीन्यस्यैवाग्नेर्नामान्तराणि सन्ति । वैश्वदेवादिकं गर्भाधानादिसंस्कारेषु होमश्चास्मिन्नेवाग्नौ द्विजगृहस्थेन कार्यः । भ्रातृमतश्चतुर्थीकर्म्मोत्तरकालेऽभ्रातृमतस्तु धनविभागकाले यद्वा पितरि प्रेते ज्येष्ठो गृह्याग्निमादधीत । उक्तकालातिक्रमाभाव आवसथ्याधानं करिष्यन्नग्न्याधानार्थोपदिष्टमासतिथिवारनक्षत्रादिके काले प्रातः सुस्नातः सुप्रक्षालि-

---

अब स्मार्त्त अग्न्याधान का विचार यहां लिखते हैं । अच्छे प्रकार जिस में निवास करें उस घर का नाम आवसथ है । उस गृह सम्बन्धी गर्भाधानादि वा वैश्वदेव होमादि कर्मों की सिद्धि के लिये जो अग्नि स्थापित किया जाता उस का नाम आवसथ्य कहाता उस का विधि पूर्वक स्थापन करना आवसथ्याधान कर्म कहाता है । इसी अग्नि के गृह्य, स्मार्त्त, तथा औपासन भी नाम हैं । श्रौत ग्रन्थोंमें इस अग्नि को औपासन कहते हैं । गर्भाधानादि संस्कारों में तथा वैश्वदेवादि होम वा भोजनार्थ नित्य पाक गृहस्थ द्विज को इसी अग्नि में करना चाहिये जो अपने माता पिता का एक ही पुत्र हो वह विवाह सम्बन्धी चतुर्थी कर्म के पश्चात् शीघ्र ही स्मार्त्त अग्नि का आधान करे और कई भाई हों तो दायभाग के समय भिन्न २ सब अपने २ घर में आवसथ्याधान करें । अथवा सब इकट्ठे ही रहें दायभाग नहो तो पिता के मरने पर ज्येष्ठ भाई गृह्याग्नि का आधान करे । उक्त काल का उलङ्घन न होने पर आवसथ्या धान करने वाला अग्न्या धान के लिये कहे मास, तिथि वार और नक्षत्रादि काल में प्रातःकाल अच्छेप्र-

तपाणिपादः स्वाचान्तः सपत्नीको यजमानो गोमयोपलिप्ते शुचौ देशे स्वासन उपविश्य देशकालौ स्मृत्वा—आवसथ्याग्निमहमाधास्यइति संकल्पं विधाय—आभ्युदयिकं श्राद्धं कुर्यात् । श्राद्धानन्तरं वाऽऽवसथ्यसङ्कल्पः । [कालातिक्रमेतु—"यावन्त्यब्दान्यतीतानि निरग्नेर्विप्रजन्मनः । तावन्ति कृच्छ्राणि चरेद्धौम्यं दद्याद्यथाविधि" इति वचनादतीतसंवत्सरसंख्यप्राजापत्यरूपं प्रायश्चित्तं मुख्यविधिना चरित्वा तदशक्तौ प्रतिप्राजापत्यमेकैकां गां गोमूल्यं वा दत्वा—अयुतगायत्रीजपं वा गायत्र्या तिलाज्यसहस्रहोमं वा शक्त्यनुकूलं विधाय—अतिक्रान्तदिवसान् गणयित्वा सायंप्रातर्होमद्रव्यं प्रत्यहमाहुतिचतुष्टयपर्याप्तं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् । तत्र वाक्य-

---

कार स्नान कर सम्यक् हाथ पांव धो आचमन कर गोबर से लीपेहुए शुद्ध स्थान में पत्नीसहित अपने २ आसन पर बैठकर (ओम् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीये०) इत्यादि प्रकार संकल्पाङ्ग से देश काल का स्मरण करके आवसथ्याग्नि का मैं आधान करूंगा ऐसा संकल्प कर के आभ्युदयिक श्राद्धकरे । अथवा श्राद्ध करने पश्चात् आवसथ्याधान का सङ्कल्प करे । यदि अग्न्याधान का समय निकल गया हो तो जितने वर्ष अग्निरहित ब्राह्मण को बीत गये हों उतने कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे और उतने दिन की चार आहुति के हिसाब से सब वर्षों का हविष्यान्न चावल वा जौ का सुपात्र ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दान देवे । व्रत करने में असमर्थ हो तो प्रत्येक प्राजापत्य व्रत के बदले में एक २ गौ का मूल्य दान करे । यह भी न कर सके तो प्रत्येक वर्ष के बदले अयुतगायत्री का जप वा तिल और घृत का गायत्री से सहस्र होम प्रत्येक के बदले करे । और सब पक्षों में बीते हुए दिनों की गणना करके सायं प्रातः होम करने के द्रव्य जौ चावल दूध घी आदि को प्रत्येक दिन की चार आहुति के हिसाब से ब्राह्मणों को दानदेवे

म्—आवसथ्याधानमुख्यकालातिक्रान्तैतावद्वर्षनिरग्नित्वजनितदुरितक्षयायैतावन्ति प्राजापत्यव्रतानि चरिष्ये । प्राजापत्यप्रत्याम्नायत्वेन प्रतिप्राजापत्यमेकैकां गां तन्मूल्यं वा ब्राह्मणेभ्यः सम्प्रददे। गायत्र्याएतावन्त्ययुतानि वा जपिष्यामि । मन्वाद्युक्तान्यप्रायश्चित्तस्य वा संकल्पं कुर्यात्] एवंकृतप्रायश्चित्तो ब्राह्मणेभ्यो होमद्रव्यस्य दानं कृत्वा स्वस्तिमाङ्गल्यं वेदपाठं कुर्यात् । ततः पत्नीयजमानयोरहतवाससां परिधानम् । वैकल्पिकावधारणम्—मन्थनाग्निरुत्तरतः पात्रासादनम् । द्वेपवित्रे, आज्यस्थाली मृन्मयी चरुस्थाली, औदुम्बरी, पालाश्यः समिधः, प्राग्घारावाघारौ कोणयोराज्यभागौ । दक्षिणा पूर्णपात्रम् । पत्नी—अधरारणिं यजमानश्चोत्तराणिं गृह्णीयात् । ततो यवोनचतुर्दशाङ्गुलमानेन द्वादशाङ्गुलोच्चमेखलायुक्तं गृह्याग्नेर्वृत्तं खरं कुर्यात् । सभ्यपक्षे

दान के समय वा व्रत के लिये (आवसथ्या०) इत्यादि यथोचित संकल्प करें । अथवा मनुस्मृति आदि में कहे अन्य किसी प्रायश्चित्त को यजमान अपने अपराध और शक्ति के अनुसार नियत करके संकल्प सहित करे । प्रायश्चित्त का ठीक २ निर्णय यजमान के दोष वा शक्ति आदि के तारतम्य तथा देशकाल की योग्यतानुसार उस २ समय के विद्वान् धर्मशास्त्रों के अनुसार करें । इस प्रकार प्रायश्चित्त कर ब्राह्मणों को होमद्रव्य का दान देके स्वस्ति पुण्याहवाचन माङ्गल्य वेदपाठ करे तदनन्तरपत्नी और यजमान शुद्ध नवीन दो २ वस्त्र पहनें । इसी अवसर में विकल्पित पदार्थों वा कर्त्तव्यों में एक २ का निश्चय करे । दो पवित्र कुश, आज्यस्थाली, मट्टी वा उदुम्बर की चरुस्थाली, पूर्व को आघार और कोणों में आज्य भाग तथा दक्षिणा वा पूर्णपात्र का अवधारण करके मन्थन पक्ष में पत्नी अधरारणि को और यजमान उत्तरारणि का ग्रहण करे । तदनन्तर एक जौ भर कम चौदह अङ्गुल नाप के पृथिवी से १२ अङ्गुल ऊंचा छः अङ्गुल की दो मेखला वाला गोलाकार गृह्याग्नि का कुण्ड बनावे । सभ्य कुण्ड बनाने के पक्ष में उस को भी

तदपि तादृशमेव । ततः कुण्डे—परिसमूहनमुपलेपनमुल्लेखनमुद्धरणमभ्युक्षणमिति पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा खरं वस्त्रेणाच्छादयेत् । ततो—अरणिपक्षेऽग्निमन्थनम् । नात्र श्रौताग्निमन्थनविधिः । मन्थने—यजमानः प्राङ्मुखश्चोविलीं धारयेत्प्रत्यङ्मुखी पत्नी मन्थनं कुर्यात् । पत्नीबहुत्वे सर्वासां मन्थनमिति केचित् । पत्न्या मन्थनाशक्तौ केनापि ब्राह्मणेन मन्थनं कार्यम् । काष्ठैरग्नेः प्रज्वालनं खरे स्थापनम् । पक्षान्तरे सोपयमनीमृत्सहितं कर्परमादाय ब्राह्मणैः परिवृतो वेदघोषमङ्गलगीतवाद्यादिभिर्जनितोत्साहो यजमानो बहुपशोर्वैश्यस्य गृहात्—सूत्रान्तरमतेनाम्बरीषाद्वाबहुयाजिनो ब्राह्मणस्य गृहाद्वा बह्वन्नपाकाद् ब्राह्मणमहानसाद्वा कर्परेऽग्निं गृहीत्वा तथैव वेदघोषादिना स्वगृहमागत्य

आवसथ्यकुण्ड के समान ही बनावे । तदनन्तर परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, उद्धरण और अभ्युक्षणरूप पांच भूसंस्कार करके कुण्ड को वस्त्र से ढांप देवे । तदनन्तर अरणिपक्ष में अग्नि मन्थन करे । यहां श्रौताग्नि मन्थन का विधि न होगा । मन्थन में यजमान प्राङ्मुख हो कर ओविली को दोनों हाथों से दाबे और पश्चिम को मुख करके पत्नी मन्थन करे । अनेक पत्नी हों तो सभी मन्थन करें यह किन्हीं का मत है । यदि पत्नी मन्थन करने में असमर्थ हो तो कोई ब्राह्मण अग्नि का मन्थन करे । काष्ठों से अग्नि को प्रज्वलित करके कुण्ड में स्थापित करे । द्वितीयपक्ष में उपयमनी मट्टी के सहित कोराखप्पर हाथ में लेके अनेक विद्वान् पुरोहितादि ब्राह्मणों से घिरा हुआ वेद के घोष, मङ्गल और गीत वादित्रादि के द्वारा उत्साह को प्राप्त यजमान बहुत पशुओं वाले वैश्य के घर से, सूत्रान्तर के मतानुसार भाड़ से, वा बहुत यज्ञ करने वाले ब्राह्मण के घर से अथवा बहुत अन्न जिस के पकाया जाता हो ऐसे ब्राह्मण की पाकशाला से खप्पर में अग्नि को लेकर वैसे वेद घोषादि के सहित अपने घर में आके कुण्ड के समीप पूर्वाभिमुख बैठकर कुण्ड में अग्नि का स्था-

कुण्डसमीपे प्राङ्मुख उपविश्य खरे निदध्यात् । ततो ब्र-
ह्मवरणम्-स्वशाखाध्यायिनं कर्मसु तत्त्वज्ञं ब्राह्मणं गन्ध-
पुष्पमाल्यवस्त्रादिभिरभ्यर्च्य---अमुकगोत्रामुकशर्मन्नावस-
थ्याग्निमहमाधास्ये तत्र कृताकृतावेक्षकब्रह्मत्वेनैभिः पुष्पच-
न्दनताम्बूलवासोभिस्त्वामहं वृणे वृतोऽस्मीति ब्रह्मणः प्र-
तिवचनम् । अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य तत्र ब्रह्मोपवेश-
नम् । यजमानस्य चात्रोत्तरतआसनं यजमानएवात्र कर्मकर्त्ता
नाध्वर्युः । अन्यऋत्विजामप्यभावः । अग्नेरुत्तरतः प्रणी-
ताप्रणयनम् । प्रदक्षिणं परिस्तरणम् । पात्रासादनम्-त्री-
णि पवित्रच्छेदनानि द्वेपवित्रे, वारणं वैकङ्कतं वा प्रादे-
शमात्रं प्रोक्षणीपात्रम् । आज्यस्थाली, चरुस्थाली, सम्मा-
र्जनकुशाः, उपयमनकुशाः, प्रादेशमात्र्यः समिधस्तिस्रः, खा-
दिरः स्रुवः, आज्यं, व्रीहितण्डुलाः, दक्षिणा-पूर्णपात्रं वरो
वा । पवित्रे कुर्यात्-त्रिभिः कुशैर्द्वे प्रादेशमात्रे कुशे छि-

---

पन करे । तदनन्तर ब्रह्मा का वरण करे । अपनी शाखा को पढा हुआ कर्मों में तत्त्वज्ञ ब्राह्मण का सुगन्ध केशर चन्दनादि पुष्पमाला और वस्त्रादि से पूजन सत्कार करके (अमुक गोत्र०) इत्यादि वाक्य द्वारा ब्रह्मा का वरण करे । ब्रह्मा के प्रत्युत्तर देने पर अग्नि से दक्षिण में ब्रह्मा का आसन वरणादि-यज्ञिय वृक्ष की चौकी विछा कर उस पर ब्रह्मा को वैठावे । यहां स्मार्त्त कर्मों में कुण्ड से उत्तर में यजमान का आसन रहे । यजमान ही यहां कर्म करेगा अध्वर्यु स्मार्त्त कर्मों में कर्म करने वाला नहीं होता । अन्य होतादि ऋत्विज् भी यहां नहीं होते । अग्नि से उत्तर में प्रणीता प्रणयन करे । प्रदक्षिण अग्नि का परिस्तरण करे । पात्रासादन में-तीन पवित्रच्छेदन कुश और दो पवित्र, वरणा वा विकङ्कत का प्रादेशमात्र प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, सम्मार्जनकुश, उपयमनकुश, प्रादेशमात्र पलाश की तीन समिधा, खदिर का स्रुवा, आज्य, धान के चावल, दक्षिणा-पूर्णपात्र वा धन सुवर्णादि सब क्रम से धरे। पवित्रच्छेदन कर प्रोक्षणी

न्यात् । प्रोक्षणीपात्रे प्रणीतोदकमासिच्य पवित्राभ्यामुत्पू-
योदिङ्गनं च कृत्वा प्रणीतोदकेन पुनः प्रोक्षणीस्थमुदकं
प्रोक्ष्य प्रोक्षणीपात्रे पवित्रे निदध्यात् । तज्जलेन यथासा-
दितानां पात्राणां क्रमेण प्रोक्षणं कृत्वा प्रणीताग्न्योर्मध्ये
प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् । आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । च-
रुपात्रे प्रणीतोदकमासिच्य तण्डुलप्रक्षेपः । दक्षिणतो ब्रह्म-
ण आज्यस्य तत उत्तरतश्च स्वस्य चरोरधिश्रयणं यजमानएव
कुर्यात् । उभयोः पर्यग्निकरणं यजमानएव कुर्यात् । स्रुवप्रतपनं
सम्मार्जनकुशैः सम्मार्जनम्, प्रणीतोदकेनाभ्युक्षणं पुनःप्रतप-
नमग्नेर्दक्षिणतो निधानं च । आज्योद्वासनम्, चरोरुद्वासनम्,
आज्योत्पवनमाज्यावेक्षणमपद्रव्यनिरसनं प्रोक्षण्युत्पवनम् ।
उपयमनकुशान्दक्षिणेनादाय वामहस्ते गृहीत्वा तिष्ठन्नग्नौ
समिधः प्रक्षिप्य प्रोक्षण्युदकेनाग्निं प्रदक्षिणमीशानमार-

पात्र में प्रणीता का जल गिरा के पवित्रों से उत्पवन करके उदिङ्गन करे । प्रणीता के जल से फिर प्रोक्षणीपात्रस्थ जल का प्रोक्षण करके प्रोक्षणीपात्र में पवित्र रख देवे । उस प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादनक्रम से सब पदार्थों का प्रोक्षण करके प्रणीता और अग्नि के बीच में प्रोक्षणीपात्र को धर देवे । आ-ज्यस्थाली में अन्यपात्र में से घी करके चरुस्थाली में प्रणीतापात्र का जल गिरा के उस में चावल छोड़े कुण्ड के दक्षिण भाग में ब्रह्मा के घी का और उस से उत्तर में अपने चरु का अधिश्रयण यजमान ही करे । दोनों का पर्यग्निकरण भी यजमान ही करे । तदनन्तर स्रुव को तपा कर सम्मार्जन कुशों से सम्मार्जन करे । प्रणीता के जल से स्रुवा का अभ्युक्षण कर के फिर तपा कर कुण्ड से दक्षिण की ओर धर देवे । तब पके हुए आज्य और चरु का उद्वासन कर के आज्य का उ-त्पवन अवेक्षण तथा अपद्रव्य हो तो निरसन कर के प्रोक्षणी का उत्पवन करे । उपयमन कुशों को दक्षिण हाथ से उठा के वाम हाथ में पकड़ कर खड़े होकर अग्नि में तीन समिधा चढ़ावे । तब ईशान कोण से लेकर सब दिशाओं में प्रो-

भ्योदगपवर्गं सर्वतो दिक्षु परिषिच्य प्रणीतासु पवित्रे नि-धायाग्नेरुत्तरतः प्राङ्मुख उपविश्य दक्षिणं जान्वाच्य ब्र-ह्मणान्वारब्धः स्रुवेण जुहुयात् । मनसापूर्वाघारः । ओम्-प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । अग्नेरुत्तरप्रदेशे त्यागेन सह होमः । हुतशेषं पात्रान्तरे प्रक्षिपेत् । त्यागा-न्तेऽग्नौ सर्वत्र द्रव्याहुतिहोमः । ओम्-इन्द्राय स्वाहा । इद-मिन्द्राय न मम । अग्नेर्दक्षिणप्रदेशे उत्तराघारहोमः । ओमग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम । ओम्-सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम । अग्नेरुत्तरपूर्वार्द्धे-आग्नेया-ज्यभागहोमो दक्षिणार्द्धपूर्वार्द्धे तु सौम्यस्य । समिद्धतमेऽग्नि-प्रदेशे वाऽऽघाराद्याः सर्वाहुतीर्जुहुयात् । ततोऽष्टर्चहोमो ना-न्वारम्भः । त्वन्नोअग्नइतिद्वयोर्वामदेवऋषिस्त्रिष्टुपछन्दो-ऽग्नीवरुणौ देवते प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः । इमंमइति शुनःशेप ऋषिर्गायत्रीछन्दो वरुणो देवता । तत्त्वेतिशुनः-शेप ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो वरुणो देवता । येतेशतमिति शु-नःशेप ऋषिर्जगतीछन्दो वरुणः सविता विष्णुर्विश्वेदेवा-

---

क्षणी जल से अग्नि का पर्युक्षण उदक्संस्थ करे । प्रोक्षणी निःशेष कर के प्रणीता में पवित्र धर के अग्नि से उत्तर में पूर्वाभिमुख दक्षिण जानु को पृथिवी में टेक कर बैठे । ब्रह्मा के अन्वारम्भ करने पर मन से प्रजापति का ध्यान करता हुआ स्रुव में घी भर के पूर्वाघार की आहुति को अग्नि के उत्तरप्रदेश में त्याग के साथ छोड़े । होम का शेष विन्दुमात्र पात्रान्तर में छोड़ता जाय । यहां सर्वत्र ही त्याग के अन्त में द्रव्याहुति का होम करना चाहिये । तत्पश्चात् अग्नि के दक्षिणप्रदेश में त्याग के साथ उत्तराघार का होम करके अग्नि के उत्तर पूर्वार्द्ध में आग्नेयाज्यभाग का और दक्षिणपूर्वार्द्ध में सौम्य आज्यभाग का होम करे । अथवा आघारादि सब आहुति अतिप्रज्वलित कुण्ड प्रदेश में करे । तदनन्तर

मरुतः स्वर्का देवताः । अयाश्चाग्नइति प्रजापतिर्ऋषिर्विः । राट्छन्दोऽग्निर्देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः । उदुत्तममिति शुनःशेपऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो वरुणो देवता पाशोन्मोचने विनियोगः । भवतन्नइति प्रजापतिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो जातवेदसौ देवते—अग्निप्रासने विनियोगः ।

ओम्—त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ १ ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ओम्—स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥२॥ ऋ० ४ । १ ।–५ । इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ ओम्—इमम्मे वरुण श्रुधी, हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० १ । २५ । १९ । इदं वरुणाय न मम ॥ ओम्—तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमा-

---

अन्वारम्भ किये विना ही लिखे अनुसार ऋषि देवता और छन्दों का स्मरण करता हुआ वन २ के त्यागों के साथ आठ ऋचाओं से आज्य का होम करे ।

नो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ ४ ॥ ऋ० १ । २४ । ११ । इदं वरुणाय न मम । ओम्—येते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ ५ ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यो न मम । केचिदिदं वरुणायेत्याहुः । ओम्—अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजथं स्वाहा ॥ ६ ॥ इदमग्नयेऽयसे न मम । ओम्—उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमथं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥७॥ ऋ० १ । २४ । १५ ॥ इदं वरुणाय न मम । ओम्—भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञथंहिथं सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥८॥ य० ५ । ३ इदं जातवेदोभ्यां न मम ।

केचिदिदमग्निभ्यामित्याहुः । अथस्थालीपाकचरुणा-ऽग्न्याधेयदेवताभ्यश्चतस्र आहुतयः ॥

अग्नये पवमानाय स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय न मम। अग्नये पावकाय स्वाहा। इदमग्नये पावकाय न मम। अग्नये शुचये स्वाहा। इदमग्नये शुचये न मम। अदित्यै स्वाहा। इदमदित्यै न मम। ततः पूर्ववत्पुनरष्टर्चहोमः। ततो ब्रह्मणान्वारब्ध उत्तरार्द्धात्स्रुवेण चरुमादाय—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

अथानन्वारब्धआज्येन जुहुयात्—

अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवागातुविदः स्वाहा॥ इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यो न मम।

अथ ब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात्—भूर्भुवःस्वरिति क्रमेण प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता । प्रजापतिर्ऋषिरु-

---

इस के पश्चात् स्थालीपाक रूप पकाये चरु से श्रौत अग्न्याधान के चार देवताओं के लिये लिखे अनुसार त्याग के साथ होम करे। इस के पश्चात् पूर्ववत् फिर आज्य से आठ ऋचाओं द्वारा होम कर के ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ यजमान उत्तरार्द्ध से स्रुव द्वारा चरु लेकर अग्नि के उत्तरार्द्ध में स्विष्टकृत् आहुति का होम करे। तदनन्तर अन्वारम्भ किये विना ही (अयास्य०) मन्त्र से घृत की १ एक आहुति देकर ब्रह्मा से अन्वारब्धयजमान त्यागों के साथ तीन व्याहृति आहुति देवे।

ष्णिक् छन्दो वायुर्देवता । प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता व्याहृतिहोमे विनियोगः ॥

ओम्भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम ओम्-भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम । ओम्-स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय न मम । इदं भूरिति वा । इदं भुवरिति वा । इदं स्वरिति वा । त्वं नो अग्ने० स त्वं नो अग्ने० । अयाश्चाग्ने० ये ते शतं० उदुत्तमं० इति पुनः पञ्चाहुतयः । प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ।

स्वाहेति बर्हिर्होमः । इदं प्रजापतये न ममेति त्यागः । संस्रवं प्राश्य पवित्राभ्यां मुखं मार्जयित्वा पवित्रे अग्नौ प्रक्षिप्याग्नेः पश्चात्प्रणीता निनीय पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं ब्रह्मणे दद्यात् । एकब्राह्मणभोजनं मतान्तरेण त्रयोविंशति-ब्राह्मणभोजनं वा ॥ इत्यावसथ्याधानम् ॥

तदनन्तर त्यागों सहित लिखे अनुसार पञ्चाहुतियों का होम कर के प्राजापत्या-हुति बर्हिर्होम, संस्रवप्राशन तथा आचमन कर के पवित्रों द्वारा अपने मुख-शिर का मार्जन कर के पवित्रों को अग्नि में छोड़ देवे । अग्नि से पश्चिम की ओर प्रणीता का निनयन कर के रक्खे हुए पूर्णपात्र वा दक्षिणा में से किसी एक का ब्रह्मा को दान देकर एक ब्राह्मण को वा स्मृत्यन्तर में कहे तेईस ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥

इति–आवसथ्याधान समाप्त हुआ ॥

अथौपासनहोमः ॥

उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणम् ॥१॥ अस्तमितानुदितयोर्दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा ॥२॥ अग्नये स्वाहा, प्रजापतये स्वाहेति सायम् ॥३॥ सूर्याय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहेति प्रातः ॥४॥ पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ । पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमांसं वर्त्ततां मयि पुनः स्वाहेति पूर्वां गर्भकामा ॥५॥ पारस्करगृह्ये काण्डे १ कण्डिका ९॥

अग्नेः पश्चात्प्राङ्मुख उपविश्य—उपयमनकुशान् समिधस्तिस्रो मणिकवारि दध्यादीनामन्यतमं होमद्रव्यमग्नेरुत्तरतः प्राक्संस्थमासाद्य, उपयमनकुशान् वामकरेणादाय तिष्ठन् दक्षिणकरेण समिधोऽभ्याधाय मणिकोदकेनाग्निं पर्युक्ष्य द्वादशपर्वपूरकेण दधितण्डुलयवानामेकतमेन द्रव्येण दक्षिणहस्तेनैव स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि वह्नौ मध्यप्रदेशे देवता ध्यायन् जुहुयात् । अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम संस्रवरक्षणम् । पुनस्तण्डुलानादाय—मनसा—प्रजापतये-

---

में होने वाले कर्म में रूढ माना जाता है । हमने (उपयमनप्रभृति०) इत्यादि पारस्करसूत्र प्रमाणार्थ स्पष्ट लिख दिये हैं शेष विधि उन्हीं सूत्रों का व्याख्यान है । अग्नि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के उपयमन कुश, तीन समिधा, मणिकघट का जल और दही आदि में से कोई एक होम द्रव्य [दही, चावल, अक्षत—नाम विना कुटे खड़े जौ ये तीन वस्तु गृह्याग्नि में नित्य होम के लिये नियत हैं] इन सब को अग्नि से उत्तर प्राक्संस्थ धरके उपयमन कुशों को वाम हाथ में लेकर खड़ा हुआ दहिने हाथ से तीन समिधा अग्नि में अमन्त्रक चढ़ा कर मणिक जल से अग्नि के सब ओर पर्युक्षण कर द्वादशपर्वपूरक होम द्रव्य को दहिने हाथ में ले के सम्यक् प्रज्वलित हुए अग्नि के मध्य प्रदेश में देवता का ध्यान करता हुआ प्रातःकाल की दोनों आहुति त्याग सहित देवे प्रत्येक का संस्रवभाग रखलेवे । द्वितीयाहुति को मन से पढ़के देवे । यदि पत्नी गर्भस्थिति

स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। संस्रवरक्षणम्। पत्नी गर्भकामा चेत्पुमाꣳसाविति मन्त्रेण पूर्वामाहुतिं स्वयं जुहुयान्मन्त्रं च स्वयं पठेत्। पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ। पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमाꣳ संवर्त्ततां मयि पुनः स्वाहा॥ इदं मित्रावरुणाभ्यामश्विभ्यामिन्द्राय सूर्याय न ममेति त्यागो यजमानस्यैव। संस्रवप्राशनम्। पत्नीकर्तृकहोमशेषस्य पत्न्येव प्राशनं कुर्यात्। अत्र समास्त्वेत्युपस्थानम्। १० मन्त्राः—

समास्त्वाग्नऋतवोवर्द्धयन्तु संवत्सराऋषयोयानिसत्या। संदिव्येनदीदिहिरोचनेन विश्वाआभाहिप्रदिशश्चतस्रः ॥१॥

संचेध्यस्वाग्नेप्रचबोधयैन-मुच्चतिष्ठमहतेसौभगाय। माचरिषदुपसत्तातेअग्ने ब्रह्माणास्तेयशसःसन्तुमान्ये ॥२॥

चाहती हो तो (पुमाꣳसौ०) मन्त्र पढके पहिली आहुति स्वयं देवे और दूसरी को यजमान देवे। त्याग दोनों के यजमान ही बोले। संस्रवप्राशन अपनी २ आहुति का दोनों करें। तदनन्तर (समास्त्वा०) इत्यादि अनुवाक से अग्निका उपस्थान करके सायंकाल का होम समाप्त करे। प्रातःकाल के होम में विशेषता यह है कि उदय से पहिले सायंकाल में होम किये द्रव्य से ही सूर्य और प्रजापति की दो आहुति पूर्ववत् त्याग सहित देवे। पत्नी यदि गर्भस्थिति चाहती हो तो पूर्ववत् (पुमाꣳसौ०) मन्त्र से पहिली आहुति देवे। और जब तक गर्भस्थिति न हो प्रतिदिन सायंप्रातः पहिली आहुति उक्त मन्त्र से देती रहे। तदनन्तर (वि-

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः । सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥ इहैवाग्ने अधिधारया रयिं मा त्वा निक्रन्पूर्वचितो निकारिणः । क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्य-मुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥४॥ क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व । सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥ अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने । विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वा-थास्मभ्यꣳ सहवीराꣳ रयिं दाः ॥६॥ अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह । विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भि-यः शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे ॥७॥ बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳशिशाधि । वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनुमदन्तु देवाः ॥८॥ अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः । प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्-दे-

वानामग्नेभिषजाशचीभिः ॥९॥ उद्वयंतमसस्परि—स्वःपश्यन्तउत्तरम्। देवंदेवत्रासूर्य-मगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥ यजुर्वेदे अ०२७मं०१-१०

इति–सायंहोमविधिः। अथ प्रातर्होमे विशेषः ॥

उदयात्पूर्वं सायंद्रव्येणैव। सूर्याय स्वाहा। इदं सूर्याय न मम। प्रजापतये स्वाहेत्युत्तराहुतिः। पत्नीगर्भकामाचे-दत्रापि पुमाꣳसाविति मन्त्रेण पत्न्याः पूर्वाहुतिहोमः। अत्र विभ्राडित्यनुवाकेनोपस्थानम्। तद्यथा–

विभ्राड्बृहत्पिबतुसोम्यंम–ध्वायुर्दधद्यज्ञ-पतावविहुतम्। वातजूतोयोअभिरक्षतित्मना प्रजाःपुपोषपुरुधाविराजति ॥१॥ उदुत्यंजा-तवेदसं देवंवहन्तिकेतवः। दृशेविश्वायसू-र्यम् ॥२॥ येनापावकचक्षसा भुरण्यन्तंजनाँ२॥ अनु। त्वंवरुणपश्यसि ॥३॥ दैव्यावध्वर्यूआ-गतꣳ रथेनसूर्यत्वचा। मध्वायज्ञꣳसमञ्जाथे ॥ तंप्रत्नथापूर्वथाविश्वथेमथा ज्येष्ठतातिंबर्हि-षदꣳस्वर्विदम्। प्रतीचीनंवृजनंदोहसेधुनि-माशुंजयन्तमनुयासुवर्धसे ॥ अयंवेनश्चो-दयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायूरजसोविमाने।

हृमसपाथंसंगमेसूर्यस्य शिशुंनविप्रामतिभी-
रिहन्ति ॥ चित्रंदेवानामुदगादनीकं चक्षु-
र्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी
अन्तरिक्षथं सूर्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च ॥४॥
आनइडाभिर्विदथेसुशस्ति विश्वानरःसवि-
तादेवएतु । अपियथायुवानोमत्सथानो वि-
श्वंजगदभिपित्वेमनीषा ॥५॥ यदद्यकच्चवृत्र-
हन्नुदगाअभिसूर्य । सर्वंतदिन्द्रतेवशे ॥६॥ त-
रणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसिसूर्य । विश्व-
माभासिरोचनम् ॥७॥ तत्सूर्यस्यदेवत्वंतन्म-
हित्वं मध्याकर्तोर्विततथंसंजभार । यदेदयुक्त
हरितःसधस्थादाद्रात्रीवासस्तनुतेसिमस्मै ॥८॥
तन्मित्रस्यवरुणस्याभिचक्षे सूर्योरूपंकृणुते
द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्यपाजः कृष्ण-
मन्यद्धरितःसम्भरन्ति ॥ ९ ॥ बण्महाँ२॥ असि
सूर्य बडादित्यमहाँ२॥ असि । महस्तेसतोम-
हिमापनस्यते-ऽद्धादेवमहाँ२॥ असि ॥१०॥ब-
ट्सूर्यश्रवसामहाँ २॥ असि सत्रादेवमहाँ २॥
असि । मह्नादेवानामसुर्यःपुरोहितो विभु-

ज्योतिरुत्तमम् ॥११॥ आयन्तइवसूर्यं विश्वे-
दिन्द्रस्यभक्षत। वसूनिजातेजनमानओजसा
प्रतिभागंनदीधिम ॥१२॥ अद्यादेवाउदिता
सूर्यस्य निरंहसःपिपृतानिरवद्यात्। तन्नो-
मित्रोवरुणोमामहन्ता—मदितिःसिन्धुःपृथिवी-
उतद्यौः ॥१३॥ आकृष्णेनरजसावर्त्तमानो नि-
वेशयन्नमृतंमर्त्यं च। हिरण्ययेनसवितारथे-
ना देवोयातिभुवनानिपश्यन्॥१४॥य०३३।३०-४३

अन्यत्सर्वं सायंहोमवत्। एवमुपयमनकुशादानादि
प्रत्यहमौपासनस्य परिचरणम् ॥

इत्यौपासनहोमविधिः समाप्तः ॥

आद्य०) इत्यादि अनुवाक से सूर्य का उपस्थान करके प्रातर्होम समाप्त करे। अन्य सब सायं होम के तुल्य जानो। इस प्रकार उपयमन कुशों के ग्रहण से लेकर औपासन अग्नि का सेवन कहा जानो॥

अथ पक्षादिकर्मविधिः ॥

पक्षाणां पञ्चदशदिनात्मकानामाद्यः प्रतिपदः पक्षादयस्तासु यत्स्मार्त्तं कर्म तस्य विधानमत्र प्रोच्यते । एतदेव श्रौताग्निषु श्रौतविधिना क्रियमाणं कर्म दर्शपौर्णमासयागपदवाच्यम् । प्रथमप्रयोगे आभ्युदयिकं कृत्वाऽमापममांसमक्षारालवणं हविष्यं व्रताशनं विधाय रात्रावग्निसमीपे भूमौ दम्पती पृथक्शयीयाताम् । प्रातः स्नात्वा कृतनित्यक्रियउदिते सूर्ये संकल्पं कुर्यात् । श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नवस्थालीपाककर्माहं करिष्ये । आत्मनो ब्रह्मणः प्रणीतानां चासनचतुष्टयं कुशैर्दत्वा पक्षादिकर्मणाऽहं यक्ष्ये तत्र त्वं मे ब्रह्मा भव । भवामीति प्रतिवचनम् । ब्रह्माणमासनउपवेशयेत् । पात्रासादने तण्डुलानन्तरं वैश्वदेवान्नासादनं विशेषस्तत्प्रोक्षणं च तत आज्यभागान्तं कर्मावसथ्याधानोक्तविधिना कृत्वा स्थालीपाकमभिघार्यादौ

अब पक्षादि कर्म का विधान यहां लिखते हैं । पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता उन सब पक्षों की आदि तिथि प्रतिपदा को होने वाला स्मार्त्तकर्म पक्षादि कहाता है । यही कर्म श्रौतअग्नियों में श्रौतविधि से किये जाने पर दर्शपौर्णमास याग कहाता है । प्रथम प्रयोग में आभ्युदयिक श्राद्ध कर पौर्णमासी के दिन आवसथ्योक्त विधि से अग्न्याधान करके उड़द मांस खार और लवण को छोड़कर हविष्यान्न का भोजन करके रात्रिमें अग्नि के समीप स्त्री पुरुष पृथक् २ सोवें । प्रातःकाल शौच स्नान तथा नित्य कर्म करके सूर्योदय होने पर संकल्प करे । अपना ब्रह्मा का और प्रणीता के लिये चार आसन कुश के बिछावे ब्रह्मा का वरण करके आसन पर बैठावे । पात्रासादन में तण्डुलों के पश्चात् वैश्वदेवान्न का आसादन और प्रोक्षण विशेष है । अन्य सब आवसथ्याधान के समान जानो । तदनन्तर आवसथ्याधान में कहे अनुसार आज्यभागाहुति पर्यन्त कर्म करके स्थालीपाक चरु का अभिघारण कर पहिले स्रुवा से पौर्ण-

स्रुवेण पौर्णमासदेवताभ्यश्चरोर्होमः। सर्वाहुतिषु पात्रान्तरे संस्रवपातनं शेषभक्षार्थं कार्यम्। अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम।(उपांशु०)—अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। इदमग्नीषोमाभ्यां न मम। उच्चैः—अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। इदमग्नीषोमाभ्यां न मम। ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे न मम। प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम। द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा। इदं द्यावापृथिवीभ्यां न मम। सर्वत्र त्यागान्ते होमः। ततस्तेनैव हुतशेषचरुणाऽग्नेरुत्तरतः प्राक्संस्थं बलित्रयं शुद्धभूमौ दद्यात्। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम। भूतगृह्येभ्यो नमः। इदं भूतगृह्येभ्यो न मम। आकाशाय नमः। इदमाकाशाय न मम। बलित्रये संस्रवरक्षणं नेति केचित्। ततो वैश्वदेवान्नमभिघार्य स्रुवेण होमः। अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम। प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम। चरोर्वैश्वदेवान्नस्य चोत्तरार्द्धादादाय होमः। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम। तत आज्येन आवसथ्याधानोक्ता भूराद्याः प्राजाप-

---

मास देवताओं के लिये चरु होम करे। सब आहुतियों का संस्रव पात्रान्तर में गिराता जावे। तदनन्तर ब्रह्म, प्रजापति, विश्वेदेव और द्यावापृथिवी के लिये आहुति देवे। सर्वत्र ही त्याग के साथ आहुति छोड़नी चाहिये। फिर उसी हुतशेष चरु से अग्निकुण्ड से उत्तर शुद्धभूमि में त्यागसहित प्राक्संस्थ तीन बलि धरे। तीन बलियों में कोई लोग संस्रव रखने का निषेध करते हैं। तदनन्तर वैश्वदेवान्न का अभिघारण करके स्रुवा से अग्नि प्रजापति और विश्वेदेवों के लिये वैश्वदेवान्न में से तीन आहुति देकर चरु और वैश्वदेवान्न दोनों के उत्तरार्द्ध से अन्न लेकर स्विष्टकदाहुति देवे। तदनन्तर घी से भूरादि प्रजापति पर्यन्त नव

त्यन्ता नवाहुतीर्जुहुयात्। संस्रवप्राशनम्। मार्जनम्। पवित्रप्रतिपत्तिः। प्रणीताविमोकः। ब्रह्मणे दक्षिणादानम्। ततः स्थालीपाकाच्चरुशेषमादाय शालाया बहिरुपलिप्तायां भूमौ प्राङ्मुख उपविश्य स्रुवेण बलिहरणम्। नमः स्त्रियै। इदं स्त्रियै न मम। नमः पुꣳसे वयसेऽवयसे। इदं पुꣳसे वयसेऽवयसे न मम। नमः शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापीनां पतये। इदं शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापीनां पतये न मम। नमो ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उतवाऽरण्ये तेभ्यः। इदं येमे प्रजा० तेभ्यो न मम। नमोऽस्तु बलिमेभ्यो हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजां मे ददतु। इदमेभ्यो न मम। शेषमद्भिः प्रप्लाव्यैकब्राह्मणं भोजयेत्। इति पौर्णमासः स्थालीपाकः। दर्शे विशेषः—स्थालीपाकेनाग्नये विष्णवे इन्द्राग्निभ्यामिति दर्शदेवताभ्यः प्रधानहोमः। अनुदिते चारम्भः शेषं समानम्॥

इति पक्षादिकर्मविधिः ॥

आहुति आवसथ्याधान में लिखे अनुसार करे। तब संस्रवप्राशन, मार्जन, पवित्रप्रतिपत्ति, प्रणीताविमोक और ब्रह्मा को दक्षिणादान देकर स्थालीपाक से शेष चरु लेकर शाला से बाहर लीपी हुई भूमि पर पूर्वाभिमुख बैठ कर स्रुवा से पांच बलि प्रावसंस्थ धरे। शेष बचे चरु को जल में डुबाके एक ब्राह्मण को भोजन करावे। यह पौर्णमासी का पक्षादिकर्म हुआ। दर्श में इतना विशेष है कि स्थालीपाक से अग्नि विष्णु और इन्द्राग्नि इन दर्शदेवताओं का प्रधान होम करे। तथा सूर्योदय से पहिले आरम्भ करे। शेष पौर्णमास कर्म के समान है॥ यह पक्षादिकर्म विधि समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चमहायज्ञाः ॥

पारस्करगृह्यसूत्रस्थद्वितीयकाण्डस्य नवमीकण्डिकायाम् "अथातः पञ्चमहायज्ञा" इत्यादिमं सूत्रम् । पञ्चमहायज्ञाइति कर्मविशेषस्य नामधेयम् । अस्मिन्पञ्चमहायज्ञ कर्मणि यद्यपि शाखाभेदादृषीणां भिन्नत्वाच्च ग्रन्थान्तरेषु भेदः स्पष्टं दृश्यते तथापि मयात्र पारस्करगृह्यानुसारेण पञ्चमहायज्ञा लिख्यन्ते । यत इदमेव सूत्रं यजुर्वेदीयमाध्यन्दिनीशाखोक्तगृह्यकर्मप्रतिपादकम् । भारतवर्षस्थद्विजेषु पारस्करगृह्योक्तानामेव विवाहादिकर्मणां प्रचुरः प्रचारो लक्ष्यते शुक्लयजुर्वेदिनामेवाधिक्यात् । मनुस्मृतौ त्वन्यशाखान्य गृह्य सूत्रानुसारेण विधानमनुमीयते । अत्र च विधानमात्रमेव प्रदर्श्यते नार्थवादहेतुवादौ । अनुष्ठाने तयोरनुपयोगात् । हेतुवादमन्वेषमाणाश्च प्रायेण कर्म नानुतिष्ठन्ति । अत आवसथ्याधानं कृत्वा तत्र कर्मचिकीर्षूणामुपकारार्थमेवौपासनहोमपक्षादिकर्म पञ्चमहायज्ञनामककर्मत्रयमत्र

भाषार्थः—पारस्कर गृह्य सूत्र के द्वितीय काण्ड की नवमी कण्डिका में पञ्चमहायज्ञ नामक कर्म विशेष का विधान किया है । यद्यपि इस पञ्चमहायज्ञ कर्म में शाखाओं और ऋषियों के भिन्न २ होने से ग्रन्थान्तरों में स्पष्ट भेद दीखता है तथापि मैं यहां पारस्कर गृह्यसूत्रानुसार पञ्चमहायज्ञों का विधान लिखता हूं । क्योंकि यही सूत्र यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखानुसार होने वाले गृह्य कर्मों का प्रतिपादक है । भारतवर्ष के अधिक प्रान्तों वा विशेष कर पश्चिमोत्तर अवध, बंगाल विहार तथा राजपूताना और सिन्ध पञ्जाब प्रान्तों के ब्राह्मणादि द्विजों में पारस्कर गृह्य में कहे हुए ही विवाहादि का विशेष प्रचार दीखता है क्योंकि इन प्रान्तों में शुक्लयजुर्वेदी ही अधिक हैं । अनुमान है कि मनुस्मृति में अन्य शाखा सूत्र के अनुसार पञ्चमहायज्ञों का विधान किया हो । मैं यहां विधानमात्र लिखूंगा किन्तु अर्थवाद और तर्कवाद यहां न लिखूंगा । क्योंकि कर्म करने में वे अङ्ग नहीं और कर्म में तर्कवाद को खोजने वाले [कि इस को ऐसा क्यों करें] प्रायः कर्म करते कराते नहीं दीखते । इस से जो गृह्याग्नि का

समासेन व्याख्यातं बोध्यम् । तत्रादौ देवयज्ञः—वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयात्—ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतयइति । विश्वे सर्वे देवभूतपितृमनुष्या देवता अस्य तद्वैश्वदेवमन्नं यद्गृह्याग्नौ लौकिकाग्नौ वा गृहस्थैः पच्यते तत्सर्वेषामेव देवादीनामन्नमत एव तेभ्योऽदत्त्वा न भोक्तव्यमपितु दत्त्वैव । तस्माद्वैश्वदेवान्नादुद्धृत्य पात्रान्तरे कृत्वा गृह्याग्निं लौकिकं वा पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयात् । ब्रह्मणे स्वाहा । इदं ब्रह्मणे न मम । प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । गृह्याभ्यः स्वाहा । इदं गृह्याभ्यो न मम । कश्यपाय स्वाहा । इदं कश्यपाय न मम । अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये न मम । इति देवयज्ञः ॥

अथ भूतयज्ञः । हुतशेषान्नेन मणिकसमीपे प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा बलित्रयं दद्यात् । पर्जन्याय नमः । इदं प-

स्थापन करना चाहते हैं उन के उपकारार्थ औपासन होम पञ्चमहायज्ञ और पपक्षादि कर्म इन तीन कर्मों का संक्षेप से व्याख्यान किया गया जानो ।

इन में पहिला देवयज्ञ दिखाते हैं । स्मरण रहे कि वैश्वदेव किसी कर्म का नाम नहीं है किन्तु विश्व नाम सब [देव, भूत, पितृ, मनुष्य चारों] के लिये पकाया अन्न वैश्वदेव कहाता है । उसी अन्न से देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और नृयज्ञ किया जाता वा करना चाहिये । यदि तदन्नसाध्य होने से गौण कर्म का नाम हो तो चार महायज्ञों का नाम वैश्वदेव होगा किन्तु भूतयज्ञमात्र का नहीं । गृह्याग्नि वा लौकिकाग्नि में कहीं पकाया हो उस में से देवयज्ञादि करके ही गृहस्थ को भोजन करना चाहिये । उस पकाये वैश्वदेव अन्न से अन्य पात्र में निकाल कर गृह्याग्नि वा लौकिकाग्नि का पर्युक्षण करके ब्रह्म आदि के नाम से पांच आहुति देवे । इति देवयज्ञः ।

आगे भूतयज्ञ—उसी होम किये अन्न में से बचे अन्न से प्रथम मणिक घट के समीप पर्जन्यादि के लिये तीन बलि त्याग सहित देके दक्षिण और उत्तर द्वार स्थूणाओं के समीप क्रम से दो बलि धरे । तत्पश्चात् पूर्वादि प्रत्येक दिशा में

जन्याय न मम । अद्भ्यो नमः । इदमद्भ्यो न मम । पृथिव्यै नमः । इदं पृथिव्यै न मम । ततो दक्षिणोत्तरयोर्द्वारशाखयोः समीपे क्रमेण बलिद्वयं दद्यात् । धात्रे नमः । इदं धात्रे न मम । विधात्रे नमः । इदं विधात्रे न मम । ततो वायवे नमइति प्रतिदिशं चतुरो बलीन् दद्यात् । वायवे नमः । इदं वायवे न मम । प्रतिदिशं मन्त्रावृत्तिः । ततो वायुबलीनां पुरस्तादुद्ग्वा दिङ्नामभिर्बलीन्दद्यात् । प्राच्यै दिशे नमः । इदं प्रा० । दक्षिणायै दिशे नमः । इदं द० । प्रतीच्यै दिशे नमः । इदं प्र० । उदीच्यै दिशे नमः । इदमुदीच्यै दिशे न मम । ततो दत्तानां वायुबलीनामन्तराले प्राक्संस्थं बलित्रयं दद्यात् । ब्रह्मणे नमः । इदं ब्रह्मणे० । अन्तरिक्षाय नमः । इदमन्त० । सूर्याय नमः । इदं सूर्याय० । ततो ब्रह्मादिबलितउदक्प्रदेशे–विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । इदं विश्वे० । विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः । इदं विश्वेभ्यो भू० । तयोरुत्तरतो बलिद्वयं दद्यात् । उषसे नमः । इदमुषसे न मम । भूतानां पतये नमः । इदं भूतानां पतये न मम । इति भूतयज्ञः ॥

(वायवे नमः) को त्याग सहित चार वार बोल कर चार बलि प्रदक्षिण क्रम से पूर्वादि दिशाओं में धरके वायु बलियों से पूर्व वा उत्तर में प्राची आदि प्रत्येक दिशाके नाम से चार बलि धरे । वायु बलियों के बीच में ब्रह्मादि के नाम से तीन बलि धरे । ब्रह्मादि बलियों से उत्तर में (विश्वेभ्यो दे०) इत्यादि दो बलि धरके इन से भी उत्तर में उषा और भूतपति के लिये दो बलि धरे । इस बीश बलियों के विधिपूर्वक धरने का नाम भूतयज्ञ वा बलिकर्म है । इतिभूतयज्ञः ॥

ततो बलिशेषान्नात्पात्रावशिष्टादेव ब्रह्मादिमध्यमबलीनां दक्षिणप्रदेशे प्राचीनावीती दक्षिणामुखः सव्यं जान्वाच्य-पितृभ्यः स्वधानमः । इदंपितृभ्यो न मम । इति पितृतीर्थेन बलिं दद्यात् । इति पितृयज्ञः ॥ तत्पात्रं प्रक्षाल्य निर्णेजनजलं ब्रह्मादिबलीनां वायव्यामुत्सृजेत् । यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः । इदं यक्ष्मणे न मम । अतोऽग्रे पारस्करगृह्यआश्वलायनगृह्ये च सूले काकादिबलिविधिर्न दृश्यते पारस्करगृह्यभाष्येषु च विस्तरेण पौराणिकश्लोकैः काकादिबलिविधानं दृश्यते । तस्य च मूलं मृग्यम् । मनुस्मृतौ च पितृयज्ञानन्तरम् । अ० ३ श्लोक ९२ ॥

शुनांचपतितानांच श्वपचांपापरोगिणाम् ।
वायसानांकृमीणांच शनकैर्निःक्षिपेद्भुवि ॥

श्वभ्यो नमः । इदं श्वभ्यो न मम । पतितेभ्यो नमः । इदं पति० । श्वपचेभ्यो नमः । इदं श्वप० । पापरोगिभ्यो नमः । इदं पाप० । वायसेभ्यो नमः । इदं वाय० । कृमिभ्यो नमः

तदनन्तर बलिकर्म से पात्र में शेष बचे अन्न से ही ब्रह्मादि के नाम से धरी मध्य की बलियों से दक्षिण की ओर अपसव्य हो दक्षिण को मुख कर बायें घोंटू को पृथिवीमें लगाके (पितृभ्यः०) मन्त्र पढ़के पितृतीर्थ से एक बलि पृथिवी पर छोड़े । इस कृत्य का नाम पितृयज्ञ है । जिस पात्र में धरे अन्न से सब बलिकर्म किया है उस का प्रक्षालन कर के धोये जल को ब्रह्मादि बलियों से वायुकोण में (यक्ष्मैतत्ते) मन्त्र पढ़के छोड़े । इस से आगे पारस्करगृह्यसूत्र तथा आश्वलायनगृह्य दोनों मूल सूत्रों में काकादि के बलियों का विधान नहीं है । परन्तु पारस्कर गृह्यसूत्र के भाष्यों में काकादि बलियों का विधान पौराणिक श्लोकों से विस्तार पूर्वक किया है । उस का मूल सूत्र खोजना चाहिये । तथा मनुस्मृति में पितृयज्ञ के पश्चात् (शुनांच०) इत्यादि एक श्लोक में छः बलि कुत्तादि के नाम से कही हैं । उस को हम ने यहां लिख दिया है । (श्वभ्यो नमः) इत्यादि

इदंकृमिभ्यो न मम । इदं बलिषट्कं तत्तन्नाम्ना भूमौ दद्यात् । इदं च कृत्यं पितृयज्ञाङ्गमित्यनुमीयते । अत्रैवाधिकसूत्रकारानुमत्या ब्रह्मयज्ञानुष्ठानावसरः ।

अथ ब्रह्मयज्ञस्वरूपम् । ब्रह्म—परमात्मा तस्य यज्ञो यजनं पूजनं भक्तिः सेवोपासनं ध्यानं स्तुतिः प्रार्थनादिकं ब्रह्मणा वेदेन क्रियते स ब्रह्मयज्ञइति शब्दार्थः । अर्थाद् ब्रह्मणो वेदेन क्रियमाणमीश्वरस्य यजनं पूजनं ब्रह्मयज्ञः । अध्यापनं ब्रह्मयज्ञइति मनुः । पारस्करगृह्यसूत्रे च ब्रह्मयज्ञव्याख्यानं नोपलब्धमतआश्वलायनगृह्योक्तं वक्ष्यते । तत्र च यत्स्वाध्यायमधीयते सब्रह्मयज्ञइति । अतो नियमेन यथाविधि विविक्तदेशे समाहितमनसा वेदाध्ययनं स्वाध्यायपदवाच्यो ब्रह्मयज्ञइति सुस्थिरमेव । कस्मिन्काले तदनुष्ठानमिति चिन्त्यते । कात्यायनः—

यश्श्रुतिजपःप्रोक्तो ब्रह्मयज्ञस्तुसस्मृतः ।

मन्त्रों द्वारा छः बलि पृथिवी पर धरे । ये छः बलि पितृयज्ञ का अङ्ग हैं ऐसा अनुमान होता है । इसी के आगे सूत्रकारों की विशेष अनुमति से ब्रह्मयज्ञ का अवसर है । प्रथम ब्रह्मयज्ञ का स्वरूप वा शब्दार्थ दिखाते हैं । ब्रह्म नाम वेद के विधि पूर्वक पाठ वा जप के द्वारा ब्रह्म नाम—परमात्मा का यज्ञ—पूजन—भक्ति सेवा उपासना—ध्यान स्तुति प्रार्थनादि करना ब्रह्मयज्ञ कहाता है । मनुस्मृति में लिखा है कि अध्यापन का नाम ब्रह्मयज्ञ है । पारस्कर गृह्यसूत्र में ब्रह्मयज्ञ का व्याख्यान नहीं मिला इस कारण हम आश्वलायन गृह्य से इस का विधान लिखेंगे । आश्वलायन सूत्र में कहा है कि "जो स्वाध्याय—नाम वेद का विधि पूर्वक पढ़ना है वही ब्रह्मयज्ञ है ।" इस कारण नियम के साथ विधिपूर्वक एकान्त शुद्ध देश में मन को वशीभूत करके वेदाध्ययन करना स्वाध्याय वा ब्रह्मयज्ञ कहाता यह अर्थ सर्वानुमत ठीक स्थिर जानो । अब किस समय ब्रह्मयज्ञ करे इसपर थोड़ासा विचार लिखते हैं—कात्यायन—जो श्रुति—वेदका जप कहा गया

सचार्वाकृतर्पणात्कार्यः पश्चाद्वाप्रातराहुतेः ।
वैश्वदेवावसानेवा नान्यत्रेत्यनिमित्तकात् ॥

अर्वाक् तर्पणात् पितृयज्ञान्ते । प्रातराहुतेः पश्चात् सूर्योदयकाले । वैश्वदेवावसाने नृयज्ञान्ते—इति त्रयः कालाः । आश्वलायनगृह्ये च—"प्राग्वोदग्वाग्रामान्निष्क्रम्य०,, इति ब्रह्मयज्ञाय वहिर्गमनं दर्शयित्वा तर्पणान्ते "प्रतिपुरुषं पितॄंस्तर्पयित्वा गृहानेत्य यद्ददाति सा दक्षिणा,, इति कथनादतिथिपूजनरूपनृयज्ञात्प्राक् कर्त्तव्य इत्याश्वलायनाशयः स्फुटमवगम्यते । आश्वलायनेन सन्ध्योपासनस्य पृथग्विधानं कृतमतोऽनुमीयते—यदाहिताग्निभिर्गृहस्थैः सायंप्रातः सूर्योदयास्तवेलायामौपासनहोमोऽग्निहोत्रं वोभयं वा यथाविध्यनुष्ठेयम् । अनाहिताग्निभिरनधीतवेदैरधीत-

---

है वही ब्रह्मयज्ञ है । उस को तर्पण से पहिले करना चाहिये वा प्रातःकाल की औपासन आहुति के पश्चात् सूर्योदय के समय करना चाहिये । अथवा अतिथियज्ञ—नृयज्ञ की समाप्ति में करना चाहिये । प्रातराहुति के पश्चात् करने का पक्ष एक गृह्याग्नि रखने वाले के लिये अच्छा घट सकेगा । क्योंकि गृह्य श्रौत दोनों अग्नि रखने वाला सम्यक् उपस्थानादि सहित गृह्य श्रौत अग्नियों का परिचरण करेगा तो उसकृत्य के पश्चात् श्रान्त होने से ब्रह्मयज्ञ का अच्छा उत्तम कर सकना कम सम्भव है । आश्वलायनगृह्य में ब्रह्मयज्ञ के लिये बाहर जाकर तर्पण के अन्त में बाहर से लौटआ कर अतिथिसत्कार रूप मनुष्य यज्ञ करना चाहिये ऐसा कहा है । इस से पितृयज्ञ तथा मनुष्ययज्ञ के बीच में ब्रह्मयज्ञ करना यह आश्वलायन का स्पष्ट ही अभिप्राय है । इसी से परिगणन में भी आश्वलायन ने—अ० ३ । १–२ में "१–देवयज्ञ । २–भूतयज्ञ । ३–पितृयज्ञ । ४–ब्रह्मयज्ञ । ५–मनुष्य यज्ञ । " ब्रह्मयज्ञ चौथा दिखलाया है । आश्वलायन ने सन्ध्योपासन का पृथक् विधान किया है [सो सन्ध्योपासन का विधान केवल इतना ही है

वेदैः सर्वैरपि सायंप्रातः सूर्योदयास्तमयवेलायां सावित्रीजपरूपा सन्ध्योपास्या । तयोरधीतवेदैश्च पाकावसरे पितृयज्ञान्ते पुनरपि यथाविधि ब्रह्मयज्ञोऽनुष्ठेयः । अनधीतवेदानामनाहिताग्निनां ब्रह्मचारिणां च सायंप्रातःसावित्रीजपरूप एव ब्रह्मयज्ञः । आहिताग्निभिश्चैककाले कार्यद्वयं कर्त्तुमशक्यं कालभेदे च चिकीर्षूणां प्रतिषेधोऽपि नास्ति । अधिकस्याधिकं फलमिति जनश्रुतेः ॥

कि सव्य यज्ञोपवीत धारण किये स्मृति प्राप्त मार्जन इन्द्रियस्पर्शादि कर मौन हो सन्ध्या करे । सायंकाल वायुकोण की ओर मुख कर बैठ के सूर्यमण्डल आधा अस्त होने समय से लेकर नक्षत्र दीखने समय तक सावित्री का जप करे । और प्रातःकाल पूर्व नाम ईशानकोण की ओर मुख कर के आधे नक्षत्र अस्त होने समय से लेकर सूर्यमण्डल दीख पड़ने समय तक गायत्री का जप खड़ा हुआ नित्य करे । यहां आचमन मार्जन प्राणायामादि इसी सावित्री जप रूप सन्ध्योपासन के उपकारी साधन हैं । यह सन्ध्योपासन कर्म ब्रह्मयज्ञ के ही अन्तर्गत है । उस से भिन्न कुछ नहीं है । [आश्वलायनगृ० । अ० ३ । ७ । ३–६ ।] में आश्वलायन ने सन्ध्योपासन का वही समय कहा है जो समय गृह्याग्नि में औपासन होम तथा श्रौत अग्निहोत्र के लिये सर्वानुमत नियत है और एक काल में दो काम हो नहीं सकते । इस से अनुमान होता है कि यह सन्ध्योपासन अनाहिताग्नि पुरुषोंके लियेहै । और जिनने श्रौतस्मार्त्त अग्नियों का आधान किया है वे गृहस्थ लोग सायंप्रातःकाल सूर्यास्त वा सूर्योदय काल में औपासन होम वा अग्निहोत्र वा दोनों विधि पूर्वक करें वे सन्ध्योपासन उस काल में नहीं कर सकते । और वेद पढ़े वा न पढ़े सभी अनाहिताग्नि लोग सायंप्रातः सूर्यास्त वा सूर्योदय काल में विधिपूर्वक सावित्री का जपरूप सन्ध्योपासन करें यह आश्वलायनादि ऋषियों का अभिप्राय है । और इन अनाहिताग्नियों में से जिन्हों ने वेद पढ़ा है वे पाक बनने के समय पितृयज्ञ के अन्त में फिर भी यथाविधि ब्रह्मयज्ञ करें । अर्थात् अनाहिताग्नि पुरुष लौकिकाग्नि में ही सदा देवयज्ञादि करें । आहिताग्नि से यह पक्ष निकृष्ट होने पर भी न करने से अत्यन्त ही अच्छा है [अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः] जिन्हों ने वेद नहीं पढ़ा ऐसे

अथ ब्रह्मयज्ञविधिः ॥

अथ स्वाध्यायविधिः ॥१॥ प्राग्वोदग्वा ग्रामान्निष्क्रम्यापआप्लुत्य शुचौ देशे यज्ञोपवीत्याचम्याक्लिन्नवासा दर्भाणां महदुपस्तीर्य प्राक्कूलानान्तेषु प्राङ्मुख उपविश्योपस्थं कृत्वा दक्षिणोत्तरौ पाणी सन्धाय पवित्रवन्तौ विज्ञायते । अपां वाएष ओषधीनां रसो यद्दर्भाः सरसमेव तद्ब्रह्म करोति द्यावापृथिव्योः सन्धिमीक्षमाणः । संमील्य वा यथा वा युक्तमात्मानं मन्येत तथा युक्तोऽधीयीत स्वाध्यायम् २ ओंपूर्वा व्याहृतीः ॥३॥ सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वामिति तृतीयम् ॥४॥ अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति ॥१॥ आश्वलायनगृह्ये अ०३ क० २ । ३ ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवपावितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिःपूत–स्ततओङ्कारमर्हति ॥
अपांसमीपेनियतो नैत्यिकंविधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यंसमाहितः ॥ म० २ ॥
एतद्विदन्तोविद्वांस–स्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ।
क्रमतःपूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ म० ४ ॥

गृहस्थ और ब्रह्मचारियों के लिये सायंप्रातःकाल सावित्रीका जप करना ही मुख्य ब्रह्मयज्ञ है। तथा आहिताग्नि लोग एक काल में दो काम कर नहीं सकते परन्तु अग्निहोत्र के समय से भिन्न समय में वे सावित्री का जप वा वेदपाठी हों तो स्वाध्यायरूप वेद का अधिक अध्यन करें तो निषिद्ध नहीं है। क्योंकि अधिक का फल अधिक ही है॥

अमावास्याद्यनध्यायेष्वपि ब्रह्मयज्ञो भवत्येव । अहरहःस्वाध्यायमधीतइतिश्रुतेः । विधौ चान्योऽपि कश्चिद्विद्वानाह—

बद्धाञ्जलिर्दर्भपाणिः प्राङ्मुखस्तुकुशासनः ।
वामाङ्घ्रिमुत्तमंकृत्वा दक्षिणंतुतथाकरम् ॥
दक्षिणेजानुनिकरो—त्यञ्जलिंतमृणेर्मतात् ।
प्रणवंप्राक्प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तिस्रएवतु ॥
गायत्रींचानुपूर्व्येण विज्ञेयंब्रह्मणोमुखम् ।
ओंस्वस्तिब्रह्मयज्ञान्ते प्रोच्यदर्भान्क्षिपेदुदक् ॥
वेदादिकमुपक्रम्य यावद्वेदसमापनम् ।
आध्यात्मिकाऽथवाविद्या ऋग्यजुःसामएवच ॥

ग्रामान्नगराद्वा प्राच्यामुदीच्यां वा दिशि यत्र जलाशयवाटिकादिसद्भावात्कर्मणि सौकर्यं जानीयात्तत्र शुचौ विविक्तदेशे गत्वा स्नात्वा हस्तपादौ मुखं वा प्रक्षाल्य तत्रासनोपरि न्यस्तप्रागग्रदर्भेषु प्राङ्मुखउपविष्टोयज्ञोपवीत्यक्लिन्नवासाः पवित्रवन्तौ दक्षिणोत्तरौ पाणीसन्धाय द्यावापृथिव्योः सन्धिमीक्षमाणः सम्मील्य वाऽक्षिणी यथा-

---

अब यहां से आगे ब्रह्मयज्ञ का विधान लिखते हैं । आश्वलायन गृ० सू० ३ । २–३ । अथ स्वाध्याय का विधान कहते हैं । ग्राम से पूर्व वा उत्तर दिशा में बाहर निकल कर जलाशय में स्नान कर शुद्ध एकान्त स्थान में सव्य यज्ञोपवीत धारण कर शुष्क वस्त्र पहिन एक आसन पर बहुत से प्रागग्र दर्भ बिछाकर उन दर्भों पर पूर्वाभिमुख बैठ आसन बांध कर [दहिना गोड़ नीचे रहे और बांया गोड़ तथा पग ऊपर रहे ऐसे आसन से बैठ कर] आचमन, तीन प्राणायाम और पुनराचमन करके पवित्र नाम पैंती जिन में पहिनी हों ऐसे बायें दहिने दोनों हाथ मिलाके अर्थात् पसारी हुई अङ्गुलि जिस की पूर्व को हों ऐसे वाम हाथ को उत्तान पसार के दहिने घोंटू पर रख उस में थोड़े कुश धर के उस के ऊपर

वाऽन्यप्रकारेण युक्तमात्मानमेकाग्रं समाहितचेतसमचलं तत्परं मन्येत तथैवासीनएकाग्रमनाः स्वाध्यायं वेदमधीयीत। एवमासनउपविश्याचम्य प्राणायामत्रयं विधाय पुनराचम्य प्रणवमादौ सकृदुक्त्वा ततस्तिस्रो महाव्याहृतीः समस्ता ब्रूयात्। तदनन्तरं तदिति सावित्रीमृचं पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वां चेति त्रिर्ब्रूयात्। यथा—ओ३म्। भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि। धियोयोनःप्रचोदयात्॥

ततएकवेदाध्यायीचेदेकं द्विवेदाध्यायी चेद् द्वौ त्रिवेदाध्यायी चेत्त्रीन् चतुर्वेदाध्यायीचेच्चतुरो वेदान् क्रमशोऽधीयीत। यावान्वेदभागः सम्यगभ्यस्तपूर्वोऽसन्दिग्धाक्षरपदपादश्च तमेव कण्ठस्थं स्वाध्यायकालेऽधीयीत। अनन्तरं तस्य तस्य वेदस्य ब्राह्मणग्रन्थानप्यभ्यस्तपूर्वानधीयीत। कल्पादीनामध्ययनमपि नानुचितं यद्यवकाशः स्याद् यदि

दहिने हाथ को अधोमुख पसारे ऐसी अञ्जलि करके आकाश मण्डल और पृथिवी के मेल को देखता हुआ वा आंखों को बन्द करके वा जिस किसी अन्य प्रकार से अपने को एकाग्र समाहितचित्त अचल और तत्पर होता जाने वैसी रीति से बैठा देखता वा न देखता हुआ निम्नलिखित प्रकार वेद का अध्ययन करे पहिले एक वार प्रणव का उच्चारण कर मिली हुई तीनों महाव्याहृतियों को बोले तदनन्तर (तत्सवितु०) इस सावित्री ऋचा को प्रथम एक पाद द्वितीय वार दो पाद तथा तीसरी वार पूरी बोले। जैसा ऊपर संस्कृत में लिखा है। तदनन्तर एक वेदाध्यायी हो तो एक का, दो वेद पढ़ा हो तो दो का, तीन वेद पढ़ा हो तो तीन और चारों वेद पढा हो तो चारों का क्रम से पाठ करे। जितने वेदभाग का पूर्व से ठीक शुद्ध अभ्यास किया हो जितने के अक्षर पद तथा पादों में सन्देह न हो उसी को स्वाध्याय काल में कण्ठस्थ पढ़े। वेद पढने पश्चात उस २ वेद के ब्राह्मण ग्रन्थों के भी पहिले से अभ्यास किये हुए

वा कण्ठस्थानि स्युः । पूर्वस्य पूर्वस्य च प्राधान्यम् । अतएवानधीतानभ्यस्तवेदोऽविद्वान्साधारण आहिताग्निरपि सावित्रीमेव सप्रणवव्याहृतिकां यथाविध्यधीयीत शतकृत्वः सहस्रकृत्वो वा जपेच्च सएव तस्य ब्रह्मयज्ञः। अतएव मनुनोक्तम् । सावित्रीमात्रसारोऽपि वरंविप्रःसुयन्त्रितः । नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ सावित्रीमप्यधीयीत– अत्राप्यपिशब्दाद्ध्वनितमेतत्॥ एवं स द्विजो बहुवकाशोऽपि कृतसर्ववेदादिकण्ठस्थोऽपि यावत्कालमेकाग्रमनसं तत्परं चात्मानं मन्येत तावत्कालमेव स्वाध्यायमधीयीत। सर्वथा समाहितमनसैवाध्येतव्यं नेयत्तानियमः । पूर्वदिवसे याव-

---

भाग का पाठ करे कल्पादिग्रन्थों का भी पाठ करना उचित है यदि कण्ठस्थ हों और यदि अवकाश हो तो उन का भी पाठ करे [श्रौत सूत्रों का नाम कल्पसूत्र है । ये कल्पग्रन्थ वेद के छः अङ्गों में एक अङ्ग हैं ।] अध्यात्मविद्या उपनिषदों का पाठ भी स्वाध्याय में परिगणित है। परन्तु वेदादि पहिले २ का पाठ करना ब्रह्मयज्ञ में प्रधान है । और ब्राह्मणादि सब उसी को जानने के साधन हैं । इसी कारण पूर्व से जिस ने वेदाध्ययन वा वेदाभ्यास नहीं किया ऐसा अविद्वान् साधारण मनुष्य आहिताग्नि हो तो भी प्रणव व्याहृतियों सहित सावित्री का ही विधिपूर्वक जपकरे अर्थात् प्रथम पूर्व कही रीति से प्रणवादि का उच्चारण करके पीछे सौ वा हज़ार गायत्री का जप करे यही उस पुरुष का ब्रह्मयज्ञ है । इसीलिये मनु जी ने कहा है कि "जो केवल वेद के सार सावित्री मन्त्र का ही जप करता और जितेन्द्रिय सन्तोषी रहता वह उत्तम ब्राह्मण है परन्तु जो जितेन्द्रिय नहीं लोभी लालची तीनों वेद भी पढ़ा है वह अच्छा नहीं । तथा (सावित्रीमप्यधीयीत) इस में कहे अपिशब्द से भी यही सूचित होता है । इस प्रकार वह द्विज बहुत अवकाश वाला भी हो तथा सब वेद उस को कण्ठस्थ भी हो पर जितने समय तक अपने को एकाग्रचित्त तथा वेदाध्ययन में ठीक तत्पर देखे उतने ही समय तक एकान्त स्थान में वेदाध्ययन करे । अर्थात् सब प्रकार एकाग्रचित्त होकर ही वेदाध्ययन रूप ब्रह्म-

न्वेदभागोऽधीतः स्यात्ततोऽग्रे दिनान्तरेऽधीयीत। एवं प्रत्यहमग्रेऽग्रे वेदसमाप्तिपर्यन्तमधीत्य पुनरादितआरभेत। प्रात्यहिकस्वाध्यायं नमोब्रह्मणइत्येतया ऋचा त्रिःपठितया सद्धा समापयेत्। ओ३म्—नमोब्रह्मणेनमोऽस्त्वग्नये नमःपृथिव्यैनमओषधीभ्यः। नमोवाचेनमोवाचस्पतये नमोविष्णवेमहतेकरोमीति॥ सर्वान्ते—ओ३म्—स्वस्ति—इत्युक्त्वा कुशानुदगुत्क्षिपेत्॥

इति ब्रह्मयज्ञः॥

एवं ब्रह्मयज्ञं समाप्य तर्पणं कुर्यादित्याश्वलायनगृह्ये लिखितम्। तच्च तथा कार्यम्। पञ्चमहायज्ञेषु कस्याप्यङ्गमदृष्ट्वा मयाऽत्र लेखादुपेक्षितम्। ये कर्त्तुमिच्छन्ति ते यथाकालं कुर्युर्नात्र विप्रतिपत्तिरस्ति। तर्पणानन्तरं गृहानागत्य हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्याचम्य तदानीमतिथिप्राप्तौ

यज्ञ करे किन्तु इतना पाठ नित्य करे यह कोई नियम नहीं है। पहिले दिन जहां तक [जिस सूक्त वा अध्याय तक] वेद भाग पढ़ चुका हो उस से आगे अगले दिन पढ़े। इस प्रकार प्रतिदिन आगे २ ग्रन्थ समाप्तिपर्यन्त पढ़ के फिर आदि से आरम्भ करे। प्रतिदिन के ब्रह्मयज्ञ को (नमोब्रह्मणे०) इस ऋचा को तीन वार पढ़ के समाप्त किया करे। सब के पश्चात् ओ३म्—स्वस्ति—शब्द कहे। ऊपर आश्वलायन तथा मनु आदि के श्लोक जो प्रमाणार्थ लिखे हैं उन सब का अर्थ ब्रह्मयज्ञविधि में आगया। इस कारण पृथक् २ सब का अर्थ नहीं लिखा॥ इति ब्रह्मयज्ञः॥

इस उक्त प्रकार ब्रह्मयज्ञ को समाप्त कर के वहीं ग्राम से बाहर तर्पण करे यह आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है। सो उस को वैसा करना ठीक है। परन्तु पांच महायज्ञों में किसी का अङ्ग न देख कर हम ने यहां तर्पण को नहीं लिखा। जो लोग करना चाहें वे यथोक्त समय में भले ही करें इस में कुछ विप्रतिपत्ति नहीं है। तर्पण के पश्चात् घर में आकर हाथ पांव धो आचमन कर उसी समय यदि कोई अतिथि उपस्थित हों तो उन के पग धोने पूर्वक चन्दन

तत्पादप्रक्षालनपूर्वकं गन्धमाल्यादिभिरभ्यर्च्यान्नं परिवेष्य-हन्ततेऽन्नमिदं मनुष्याय-इति मन्त्रेण संकल्प्य तमाशयेत्। अतिथ्यभावे षोडशग्रासपरिमितमल्पान्नसत्त्वे चतुर्ग्रासपरिमितं वाऽन्नं पत्रावल्यादौ धृत्वा निवीती भूत्वोदङ्मुख उपविष्टो-हन्ततेऽन्नमिदं मनुष्यायेति संकल्प्योदकपूर्वकं कस्मैचिद् ब्राह्मणाय दद्यात् । अनुपस्थितौ संकल्प्य सुगुप्तप्रदेशे रक्षयेत्पश्चादागताय ब्राह्मणाय बुभुक्षितायान्यस्मै मनुष्याय वा दद्यात् । अन्विष्य वा दद्यात्। एवं शुद्धमन्नं यत्रान्वहं भिक्ष्वर्थं निःसार्यते तत्र भिक्षुका अप्यनाहूता आयान्त्येव। एवमहरहः स्वाहां कुर्यादन्नाभावे केनचिदाकाष्ठाद्देवेभ्यः’ पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्चोदपात्रात् । एवम-

---

केशर आदि सुगन्ध तथा माला पुष्पादि द्वारा अतिथि ब्राह्मण का पूजनकर अन्न परोस के-(हन्ततेऽन्नमिदं मनुष्याय) इस मन्त्रसे संकल्प करके अतिथि को भोजन करावे। यदि कोई अतिथि न हो तो सोलहग्रास वा थोड़ा अन्न हो तो चार ही ग्रास अन्न पतली वा दौना में धर यज्ञोपवीत को कण्ठ में करके उत्तर को मुख कर बैठा हुआ (हन्तते०) इसी उक्त मन्त्र से संकल्प करके प्रथम जल देकर किसी ब्राह्मण को अन्न दे देवे। यदि कोई ब्राह्मण उपस्थित न हो तो संकल्प करके कहीं सुरक्षित रख छोड़े। पीछे कोई ब्राह्मण आवे तो उस को वा किसी अन्य भूखे दुःखी मनुष्य को देदेवे अथवा खोज कर पीछे किसी ब्राह्मण भिक्षुक को देदेवे। जैसे जहां सदावर्त्त लगाया जाता है वहां प्रायः अन्नार्थी आते, प्याऊ पर जलार्थी आया ही करते हैं वैसे ही पकाया हुआ शुद्ध अन्न जिन गृहस्थों के घरमें अतिथि के लिये नित्य निकाला जाता है वहां अन्नार्थी विना बुलाये भी आने ही लगते हैं। पञ्चमहायज्ञ के अन्त में पारस्कर गृह्यसूत्रकार लिखते हैं कि इस उक्त प्रकार नित्य २ स्वाहा शब्दान्त मन्त्रों से देवयज्ञ करे। यदि किसी कारण अन्न प्राप्त न हो तो फल मूल कन्द शाकादि जो हो उसी से पञ्चमहायज्ञ करे। यदि खाने को कोई भी पदार्थ न मिले तो

हरहः पञ्चमहायज्ञान् गृहस्थः कृत्वैव भुञ्जीत । बालज्येष्ठा गृह्या यथार्हमश्नीयुः । पश्चाद्गृहपतिः पत्नीच । पूर्वो वा गृहपतिः । तस्माद् स्वादिष्टं गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः ॥ अतिथिभ्योऽशितेभ्योऽनन्तरं तस्मात्स्वादन्नाद्यदिष्टं तद्गृहपतिः पत्न्याः पूर्वमश्नीयादित्यर्थः । इति पारस्करसूत्राणि--२ । ९ ॥

यदित्वतिथिधर्मेण क्षत्रियोगृहमाव्रजेत् ।
भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कामंतमपिभोजयेत् ॥
वैश्यशूद्रावपिप्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ।
भोजयेत्सहभृत्यैस्ता-वानृशंस्यंप्रयोजयन् ॥
इतरानपिसख्यादीन् संप्रीत्यागृहमागतान् ।
सत्कृत्यान्नंयथाशक्ति भोजयेत्सहभार्यया ॥

केवल सूखी समिधा मात्र स्वाहान्त मन्त्रों से अग्नि में चढ़ावे । क्योंकि वह भी अग्नि का भोजन है । तथा अन्न के अभाव में पितृ, भूत और मनुष्य यज्ञ के लिये उन २ मन्त्रों से जल छोड़े । इस प्रकार नित्य २ पञ्चमहायज्ञों को करके ही गृहस्थ पुरुष भोजन करे । प्रथम बालक बालिकाओं को भोजन कराया जाय तब पीछे अन्य लोग करें । सब से पीछे घरके मुखिया स्त्री पुरुष भोजन करें । अथवा अतिथियों को भोजन कराने पश्चात् पत्नी से पहिले गृहपति पुरुष भोजन करले तब अन्य करें । अर्थात् पहिले कथन से स्त्री पुरुष दोनों पीछे से साथ ही भोजन करें और द्वितीय पक्ष है कि पुरुष स्त्री से पहिले करले और स्त्री सब से पीछे भोजन करे । अतिथियज्ञ पर मनुस्मृति में कुछ विशेष लिखा है सो यहां दिखाते हैं-

यदि अतिथि रूप से क्षत्रिय पुरुष ब्राह्मण के घर आवे तो ब्राह्मण अतिथियों को भोजन कराने पश्चात् भले ही उस क्षत्रिय को भी भोजन करावे। यदि अतिथि रूपसे वैश्य तथा शूद्र ब्राह्मण के यहां आवें तो अन्य भृत्यों को भोजन देते समय उन को भोजन करा देवे । तथा प्रीति के कारण आये हुए अन्य मित्रादि को यथाशक्ति सत्कार पूर्वक स्त्री के साथ में भोजन करा देवे । विवाह

सुवासिनीं कुमारीश्च रोगिणोगर्भिणीःस्त्रियः ।
अतिथिभ्योऽग्रएवैता-न्भोजयेदविचारयन् ॥
अदत्वातुयएतेभ्यः पूर्वंभुङ्क्तेविचक्षणः ।
सभुञ्जानोनजानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥
भुक्तवत्स्वथविप्रेषु स्वेषुभृत्येषुचैवहि ।
भुञ्जीयातांततःपश्चा-दवशिष्टंतुदम्पती ॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्चदेवताः ।
पूजयित्वाततःपश्चाद्-गृहस्थःशेषभुग्भवेत् ॥
अघंसकेवलंभुङ्क्ते यःपचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनंह्येत-त्सतामन्नंविधीयते ॥ मनुः ३ ॥

इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः ॥

होकर आयी नयी पुत्रवधू, क्वारी कन्या, पथ्य खाने वाला रोगी और गर्भवती स्त्री तथा छोटे लड़के इन सब को अतिथियों से भी पहिले विना विचारे भोजन करा देवे । इन सब देवयज्ञादि के भागों को न दे कर जो पुरुष पहिले स्वयं खा लेता है वह खाने वाला कुत्तों और गीधों से अपने भावीभक्षण को नहीं जानता कि मुझ को कुत्ते आदि खायेंगे। यह कथन पञ्चमहायज्ञ न करने वाले के लिये निन्दार्थवाद है । अतिथि ब्राह्मणों के और अपने भृत्यों के भोजन कर लेने पर शेष बचे अन्न को स्त्री पुरुष दोनों खावें । देवता, ऋषि, मनुष्य, पितृ और गृह्य देवताओं का पूजन कर के गृहस्थ पुरुष शेष का भोजन करने वाला हो । इन देवादि में ऋषियों का पूजन स्वाध्याय रूप ब्रह्मयज्ञ से होता है । वह पुरुष केवल पाप का भक्षण करता है जो अपने ही लिये पकाता है । और यज्ञों से शेष बचे का भोजन श्रेष्ठों का अन्न माना जाता है । इसलिये नित्य २ पञ्चमहायज्ञ गृहस्थ को जिस किसी प्रकार अवश्यमेव कर्त्तव्य हैं ॥

इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः ॥